संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

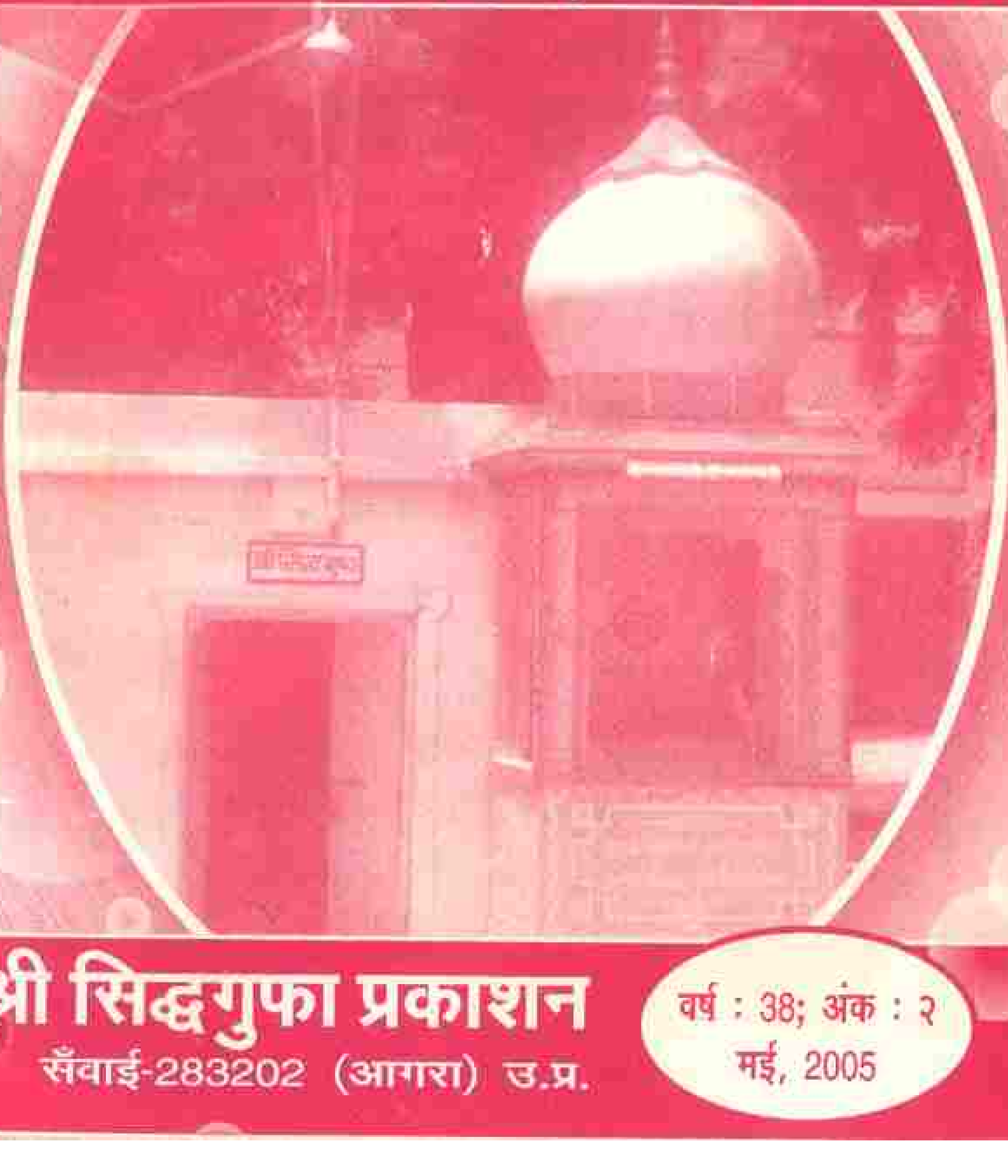

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 38; अंक : २
मई, 2005

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डॉ.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में...

- अमृत कण 2
- शास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्णायक या निर्माता कौन ? (विशेष लेख) . 3
- सम्पादकीय 8
- हे प्रभु रामलाल....... – राजेश कुमार सिंह (राजू) 10
- विक्रम संवत् की प्रयोज्यता – पं० महेश बोहरे 11
- जासु कृपा नहिं कृपा अघाती – डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर 13
- संस्कार शक्ति व साधना शक्ति – कु० रुक्मिणी वर्मा 14
- वंदे धेनु मातरम् – राजेश कुमार सिंह 25
- गुरु दोहावली – दिनेश शर्मा (जरेरा) 27
- मेरे सद्गुरुदेव– विजय सिंह 28
- महात्मा अमीरानन्द – राजेश कुमार श्रीवास्तव 31
- आश्रम समाचार 36

एक प्रति	: रु. 09-00
वार्षिक शुल्क	: रु. 100-00
द्विवार्षिक	: रु. 190-00
आजीवन	: रु. 800-00

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 38
अंक 2

मई
2005

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्यानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

शंकर शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य–
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता।
संसारहेतु रपि यः पुनरन्तकालस्तं
शंकरं शरणदं शरणं व्रजामि।।

अर्थात्

जो इस सम्पूर्ण चराचर जगत के कर्ता और इसे अपने किए हुए कार्मो के अनुसार सुख-दुःख देने वाले हैं, जो संसार की उत्पत्ति हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देने वाले उन्हीं भगवान शंकर की मैं शरण लेता हूँ।

...ध सम्पादक
...ण्डलों के अध्यक्ष
...ं गुरु भाई-बहिन

.... 2
लेख) . 3
.... 8
.... 10
.... 11
.... 13
.... 14
.... 25
.... 27
.... 28
.... 31
.... 36

अमृतकण

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभं पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

(गीता ८/१४)

जो पुरुष अनन्यचित्त होकर नित्य–निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझ में लगे हुए योगी को मैं सहज में ही प्राप्त हो जाता हूँ।

❊ ❊ ❊

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुः खेषु तथा मानापमान योः।।

अपमान में जिसके अन्तःकरण की वृत्तियाँ भली भाँति शान्त हैं, ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक् प्रकार से स्थित है अर्थात् उसके ज्ञान में परमात्मा के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं।

❊ ❊ ❊

भ्रातर्यदीदं परिदृश्यते जगन्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावित शुद्धमानसः सुखी भवानन्दमयो निरामयः।।

(अध्यात्म रामायण ७/५/६०)

भाई ! यह जो कुछ जगत् दिखाई देता है, वह सब माया है। इसे अपने चित्त से निकालकर मेरी भावना से शुद्धचित्त और सुखी होकर आनन्दपूर्ण और क्लेशशून्य हो जाओ।

❊ ❊ ❊

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पंचसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः।।

(विदुरनीति १/१०५)

जो विद्वान पुरुष (आँख–कान आदि) नौ दरवाजे वाले, तीन (वात–पित्त–कफ रूपी) खम्भों वाले, पाँच (ज्ञानेन्द्रिय) साक्षी वाले आत्मा के निवास स्थान इस शरीर रूपी गृह को जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है।

❊ ❊ ❊

❑ विशेष लेख

शास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्णायक या निर्माता कौन ?

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

मैने अपने कई व्याख्यानों में यह भली भाँति समझाया है कि पतञ्जलि देव जी ने पुरुष प्रकृति विवेक को योग माना है। उन्होंने सूत्र लिखा है–

"सत्व पुरुषयाः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्" अर्थात् जब पुरुष (आत्मा) और प्रकृति की समान रूप से शुद्धि हो जाती है तो कैवल्य हो जाता है। कैवल्य का अर्थ है अकेलापन इस समय न प्रकृति अपने रूप में है और न पुरुष अपने रूप में इस समय हम दुकेलेपन में हैं। इस समय हमारी आत्मा अकेलेपन में नहीं है। वह बुद्धि बोधात्मा है। बुद्धि के अनुसार देखता है। वैसे आत्मा बिल्कुल अविकारी है किन्तु जब तक कैवल्य लाभ नहीं होता तब तक विकारी जैसा आभासित होता है। जैसे कोई स्वच्छ शीशा हो उसके सामने किसी रंग का फूल रख दिया जाए तो शीशा भी उस रंग का जैसा दिखाई देता है। यदि फूल हटा दिया जाए तो शीशा बिल्कुल स्वच्छ दिखाई देता है इसी प्रकार से हमारी आत्मा इस समय प्रत्यायानुपश्य है। प्रत्ययानुपश्य का अर्थ है बुद्धि के बोद्ध को देखता है अपने स्वरूप को नहीं देखता। बुद्धि जैसा दिखा दे उसी के अनुसार अपने को सुखी दुखी रोगी आदि मानने लगता है। इसलिए पतञ्जलि जी ने एक मात्र लक्ष्य ढूँढा है कि प्रकृति और पुरुष दोनों अलग–अलग हो जाए ताकि कैवल्य लाभ हो जाए। इस अवस्था में योगी सुखी–दुखी–रोगी आदि की वृत्तियों से कभी दुखी नहीं होता और अपने स्वरूप में आहलादित रहता है। ये तो रहा पतञ्जलि जी का लक्ष्य। किन्तु संसार में अन्यान्य बहुत से मत एवं साधनाएँ हैं। संसार में लोग परमात्म–लाभ करना चाहते हैं। वे **'मुण्डे–मुण्डे मतिर्भिन्नाः'** के अनुसार अपनी मति एवं रूचि के अनुसार परमात्मा की ओर चलते हैं। इसके लिए उनके अनेक सिद्धान्त बने हुए हैं। उन सिद्धान्तों पर चलते हुए वे थोड़ी दूर चलकर रुक जाया करते हैं। उससे आगे चल नही पाते क्यों कि उन सिद्धान्तों के निर्माता सीमित योग्यता वाले होते हैं उनका ज्ञान पूर्ण नही होता।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जो सिद्धान्त बनाये हैं वे पूर्ण हैं क्योंकि वे **'साक्षात्कृत धर्मा'** थे। इसलिये उन्होंने जो उपदेश दिया वह यथार्थ है। यह दूसरी बात है कि उन बातों को समझने वाला ही न हो– कोई उन्हें समझ ही नही पाये। वस्तुतः सिद्धान्तों को रचने वाला

और उनका निर्णायक कौन हो सकता है इस बात को कोई समझ लेगा तो ठीक-ठीक रास्ते पर चल सकता है। संसार में प्रायः **'अन्धेन नीयमानाः यथा अन्धाः'** जिस प्रकार से एक अंधा और अंधों को ले जाया करता है उसी प्रकार से मतिभेद के अनुसार लोगों ने सिद्धान्त निकाले और अन्य लोग उन पर चलते रहे। इस प्रकार से भारत वर्ष में नाना मत खड़े हुये किन्तु वे सब अपूर्ण रहे क्योंकि उनके प्रस्तुतकर्ता स्वयं अपूर्ण थे। इसलिये ऐसे सिद्धान्त अपूर्ण रहा करते हैं। कुछ लोग ऐसे सिद्धान्त निकालते है जिसमें कुछ करना ही न पड़े। एक अखिल भारतीय योग सम्मेलन में एक प्रतिष्ठित योगी महात्मा ने कहा-मन जहाँ जाये, जाने देना चाहिए। रुक जाये तो ठीक है न रुकेगा तो न सही। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है-

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेपूजायते।
सङगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते
क्रोधाद भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

अर्थात्-विषयों का चिन्तन करने में उनमें आसक्ति हो जाती है आसक्ति होने से कामना बढ़ जाती है। कामना की आपूर्ति से क्रोध पैदा होता है, क्रोध से मोह, मोह से स्मृति का नाश तथा स्मृति के नाश से बुद्धि नाश और बुद्धि नाश से सब प्रकार का पतन हो जाता है।

हमारे आचार्यों ने जो कुछ सिद्धान्त दिये हैं वे पूर्णतया सत्य हैं उनमें कोई कमी नहीं है। सिद्धान्त बनाने का अधिकार किसको है ? इसको थोड़ा समझ लो। आजकल सिद्धान्तों के निर्माता कौन हैं ? आज कल सिद्धान्तों के निर्माता वे हैं जो दुनियावी भोग-विलास में पड़े रहते हैं जिन्होंने तपस्या करके देखा नहीं, योग ध्यान करके देखा नहीं-वेद, उपनिषद का अध्ययन किया नहीं, ऐसे लोग सिद्धान्त बनाया करते हैं और लोगों को अपने पीछे लगाया करते हैं किन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता। थोड़े दिन उनके मानने वाले चला करते हैं किन्तु गुमराह हो जाया करते हैं। सिद्धान्तों के निर्माता या निर्णायक कौन हुआ करता है? सिद्धान्तो का रचयिता निर्णायक कौन हुआ करता है? सिद्धान्तों का रचयिता या निर्णायक वही व्यक्ति हो सकता है जिसको ध्यान योग से 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' प्राप्त हो गया हो। वेदों में तथा अन्य शास्त्रों में ईश्वर से इस प्रकार की बुद्धि के लिये बहुत प्रार्थना की गई है-**यां मेधां देवगणाः पितरश्च उपासते........**।

जिस मेधा की देवता और पितर प्रार्थना करते हैं-हे अग्नि स्वरूप परमात्मा। वह बुद्धि हमें प्रदान कर। ऋषि मुनि और आचार्यों ने जिस बुद्धि के लिये प्रार्थना की उसी बुद्धि का योग दर्शन में वर्णन आता है।

योगाभ्यास करते–करते स्फुट प्रज्ञालोक हुआ करता है। स्फुट प्रज्ञालोक का अर्थ है–बुद्धि का आलोक। बुद्धि का प्रकाश पूर्णरूप से प्रकट हो जाना। बुद्धि के अन्दर इतना प्रकाश आ जाता है जिससे बुद्धि के अन्दर किसी भी वस्तु का असत्य निर्णय नही आता। सत्य निर्णय ही आता है। उस बुद्धि का नाम ही ऋतम्भरा प्रज्ञा है। **'ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भरा'** सत्य को ही धारण करने वाली बुद्धि योगी के अन्दर आ जाती है। **'तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबंधी'** ऋतम्भरा के संस्कार अन्य संस्कारों को रोक देते हैं और कोई वृत्ति पैदा होने ही नहीं देते। बुद्धि में ऋतम्भरा के संस्कार ही शेष रहते हैं। ऋतम्भरा बुद्धि योग साधना से ही आती है। इसके अतिरिक्त भी संसार में यदि कोई मनुष्य सत्य बोलने का ही व्रत कर ले तो इसके सत्य बोलने के व्रत का परिणाम निकलेगा कि यदि कोई उससे झूठ बुलवाना चाहे तो वह झूठ बोल नही सकता वह सत्य ही बोल सकता है। इससे परिणाम यह निकलेगा कि जो कुछ वाणी वह कहा करता है वह वाणी सत्य होने लगती है। **'अमोघाऽस्य वाणी भवति'** उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। सत्य बोलने से एक प्रकार से उस साधक को वाक्‌सिद्धि हो जाती है। योग दर्शन में सूत्र आया है–**''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''** सत्य प्रतिष्ठा से उसकी वाणी क्रिया फलवती हो जाया करती है अर्थात् वह जैसा जो कुछ कहा करता है वह वैसे ही हो जाया करता है। यह सत्य की प्रतिष्ठा का फल है। इस प्रकार से बढ़ते–बढ़ते योगी को कालान्तर में ऋतम्भरा प्रज्ञा आ जाती है ऋत को–सत्य को धारण करने वाली उसे बुद्धि प्राप्त हो चुकी है। इसी पूर्ण पारदर्शी एवं निर्मल बुद्धि में सत्य का पूर्ण प्रकाशन हुआ करता है। इस प्रकार की बुद्धि को प्राप्त किये बिना जो लोग सिद्धान्त कहा करते हैं उसके अन्दर गलती एवं भ्रम हुआ करता है क्योंकि वे प्रकृति के अन्दर (रजोगुण) मिले हुये होते हैं। ऐसे भ्रामक सिद्धान्तों से समाज के लोगों के साथ बहुत बड़ा धोखा हो जाया करता है। लोग जो जिज्ञासु हैं, वे अपने परम श्रेय को प्राप्त करना चाहते हैं। कौन उनको आगे ले जाकर आत्मदर्शन करा सकता है इस बात को वे नही जानते।

कोई सन्त, महात्मा, साधु काषायवस्त्र धारी चाहे वह सिद्धान्त जानता हो न जानता हो किन्तु साधु रूप में जो कुछ वह कह देता है बेचारे लोग उसकी बात को मान लेते हैं और अपने आप को उस रास्ते पर चलाने का प्रयत्न किया करते हैं। किन्तु बात **''अन्धेन नीयमानाः यथाअंधा''** वाली ही रहती है। जैसे एक अंधा और अंधों को ले जाते हुये कुँये में गिर जाता है तो और अंधे भी उसके पीछे चलते हुये कुँये में गिर जाया करते हैं। अस्तु ! तुम सोचते होंगे कि ऋतम्भरा दो चार दिन की साधना में प्रकट हो जायेगी ऐसी बात नहीं है। इसे प्राप्त करने के लिए काफी संयम की आवश्यकता रहेगी। तप एवं ब्रह्मचर्य की आवश्यकता रहेगी। लम्बे समय तक स्वाध्याय एवं ध्यानाभ्यास के फलस्वरूप ही यह प्रकट

हो पायेगी। अपनी साधना में निरन्तर रत रहने पर ही यह यथार्थ बुद्धि प्राप्त हुआ करती है। जिनके अन्दर यह बुद्धि नहीं है वे मन घड़न्त सिद्धान्त बना लेते हैं और उन्हें प्रचारित किया करते हैं। तुमने नकटा पंथी की बात सुनी होगी। यह कोई सिद्धान्त की बात नहीं है। किन्तु किम्बन्दती है—किसी की अचानक मूल में नाक कट गई। किसी ने पूछा अरे भाई ! क्या बात है, कोई अपराध किया है तुमने ? यह नाक तुम्हारी कैसे कट गई। वह कहने लगा— वाह ! वाह ! क्या बात करते हैं आप ? मेरी नाक किसी ने काटी नहीं है। मैंने स्वयं काटी है। दूसरा पूछने लगा क्यों काटी है आपने ? वह कहने लगा—इसलिये काटी है कि यह बड़ी होती है इसके ओट में भगवान रहता है। नाक की ओट के कारण वे दिखाई नहीं देते। मैंने इसलिये नाक को काट लिया है। अंध विश्वासी लोग हरेक की बात पर विश्वास कर लेते हैं। उस व्यक्ति की बात पर विश्वास करके ऐसे ही एक व्यक्ति ने कहा—यदि ऐसी बात है तो हम भी भगवान के दर्शन करना चाहते हैं। उसने भी अपनी नाक कटवा ली। दुःख तो बहुत हुआ। किन्तु ईश्वर दिखाई नहीं दिये। उसने कहा— मुझे तो ईश्वर दिखाई नही दिये। नाक काटने वाले ने कहा—अब तुम्हारी नाक तो कट ही गई है। लोग तुम्हें बेवकूफ कहेंगे। इसलिये तुम कह देना—हाँ; ईश्वर के दर्शन हुये हैं। उसने भी ऐसा ही कहना शुरू कर दिया।

इस प्रकार से बहुत से लोग इस जाल में फँस गये और मजबूर होकर कहने लगे ईश्वर का दर्शन हुआ है। फैलते—फैलते यह बात राजा तक पहुँच गई। राजा ने अपने मंत्री से कहा— सुना है नाक काटने से भगवान के दर्शन हो जाते हैं। हम भी भगवान का दर्शन करना चाहते हैं। मंत्री बुद्धिमान था। वह कहने लगा महाराज ! आप जरा धैर्य रखें ! पहले मैं अपनी नाक कटवा कर देखता हूँ। यदि मुझे भगवान के दर्शन हो गये तो आप भी कटवा लेना। मंत्री ने अपनी नाक कटवा ली। किन्तु भगवान के दर्शन नहीं हुये। वह कहने लगा—मुझे तो भगवान के दर्शन नहीं हुये। काटने वाले ने कहा खबरदार ! अब तुम्हारी नाक तो कट ही गई है इसलिये तुम भी यह कहना शुरू कर दो कि भगवान के दर्शन हुये हैं अन्यथा लोग तुम्हें बेवकूफ कहने लगेंगे। वहाँ तो उसने भी हाँ में हाँ मिलाई किन्तु वहाँ से सीधे राजा के पास पहुँच कर बताया—महाराज बिल्कुल झूठी बात है। भगवान के कतई दर्शन नहीं होते हैं। इन लोगों ने झूठा प्रपंच फैलाया हुआ है। राजा ने आज्ञा दी—जितने भी नकटे दिखाई दें उन सब को कारागार में बन्द कर दो। उनकी आज्ञानुसार सारे नकटों को जेल में बन्द कर दिया गया। अस्तु!

इसी प्रकार से लोगों ने गलत—गलत सिद्धान्त बना डाले। ऐसे सिद्धान्तों को हम प्राचीन ऋषियों की पद्धति के विरुद्ध मानते हैं ? इन सिद्धान्तो के पतन के अलावा कुछ

परिणाम नहीं मिला। कई लोगों ने–

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुन मेव च
एते पञ्चमकाराः स्युः मोक्षदा युगे युगे।

अर्थात् मुक्ति को देने वाले पञ्चमकारों का प्रचार किया ये पञ्चमकार कौन–कौन से हैं ? सुनो ! वे हैं मद्यपान करना, माँस खाना, मछली खाना, मुद्रा एवं व्यभिचार। इस प्रकार से मनमाना सिद्धान्त निकाले। इन सिद्धान्तों पर भी लोग खूब चले। किन्तु वे आत्मोत्थान की ओर नहीं चल पाये और उनका पतन ही हुआ। यह तो केवल मात्र लोगों के मनमाने सिद्धान्त और भेड़ चाल की बात थी। जिन लोगों में तप का लवलेश नहीं, संयम नहीं, आहार–विहार ठीक नहीं, ब्रह्मचर्य नहीं, योगध्यान नहीं, अन्तर्दृष्टि नहीं, ऐसे लोग न्यारा पंथ चलाते हैं, किन्तु इनमें सच्चाई नही होती। ऐसे लोग स्वयं अज्ञान कूप में पड़े हुये होते हैं। दूसरों को गुमराह करके पाप के भागीदार बना करते हैं।

इसलिये सिद्धान्तों के निर्माता व प्रणेता ऋषि ही हुआ करते हैं। वे **'साक्षात्कृत धर्मा'** व आप्तकाम होते हैं। उनकी बुद्धि में जो भी बात आती है अथवा वे जो कुछ कह दिया करते हैं वह सत्य ही हुआ करती है। उनकी वाणी अथवा विचार में असत्य का लवलेश नहीं होता। उनकी वाणी शास्त्र के रूप में हमें प्राप्त है।

गीता में भगवान कहते हैं–

'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ'

अर्थात् कार्य अकार्य में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र में जो कुछ जैसा कहा गया है उसी के अनुसार चलना चाहिये। जो मनुष्य शास्त्र के अनुसार चलकर साधना करता है वह स्फुट प्रज्ञालोक तक पहुँच ही जाता है योग शास्त्र के सिद्धान्त ने अपनी शक्ति को पहचाना है और उन पर अपना अधिकार पाया है। उन्होंने दूसरों की शक्ति पर जीना नहीं चाहा है। ये अपनी ताकत से ही ताकत वाले बनते हैं। इसलिये योग शास्त्र के सिद्धान्तों को समझ कर तुम्हें कल्याण पथ पर चल पड़ना चाहिये।

योग का पवित्र मार्ग ही कल्याण का एकमात्र रास्ता है उसी पर चलो। बार–बार आशीर्वाद !

❋ ❋ ❋

● सम्पादकीय

आत्मवान भव !

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

हमारी हिन्दू संस्कृति में बड़े–बुजुर्ग छोटों को आशीर्वाद देते हुये कहते हैं–चिरंजीव भव! अर्थात् तुम्हारी बहुत लम्बी उम्र हो, बहुत दिनों तक जीवित रहो। वस्तुतः देखा जाये यदि एक मनुष्य की बहुत लम्बी आयु हो तो उससे क्या लाभ यदि उसे आत्मलाभ नहीं हो पाया हो तो! अज्ञानुयक्त दीर्घ जीवन जीवन में सुख और शान्ति नहीं दे सकता। इसलिये मनुष्य के लिये यह आवश्यक है कि वह प्रकाशमय जीवन जीये। श्रीमद्भगवगीता में भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी ने अर्जुन को 'योगी भवार्जुन' का आशीर्वाद एवं उपदेश दिया है। योग साधना के द्वारा ही मनुष्य अपने सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म संस्कारों को जलाकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। संसार में सद्गुरु ही ऐसे महापुरुष होते हैं जो शिष्य को 'आत्मवान भव!' का आशीर्वाद देते हैं। हमारे प्राणाधार सद्गुरुदेव अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने बच्चों को हमेशा एक ही बात का आशीर्वाद देते थे–लल्ला! योगी बनो, ध्यानी बनो।'' योग से ही मनुष्य पूर्णता को पाया करता है। जब तक मनुष्य जीवभाव में रहता है तब तक ही भटकता है दुःखी रहता है किन्तु आत्मवान अथवा आत्मनिष्ठ हो जाने पर सब क्लेश–दुःख दूर हो जाते हैं। आत्म प्रतिष्ठ होना योग का लक्ष्य है। वेदान्त का लक्ष्य भी अद्वैत सिद्धि है। वस्तुतः ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। योग सिद्धान्त के अनुसार समाधि की पराकाष्ठा में ही कैवल्य लाभ होता है यही 'अद्वैत' स्थिति है इसे ही गीता में अव्यय पद, परमपद, ब्रह्म निर्वाण आदि नामों से अभिहित किया गया है। इसी को ब्राह्मी स्थिति भी कहा गया है जिसमें चेतना का पूर्ण विकास होता है। जीव प्रकृति के बन्धन से सर्वथा एवं सदा के लिये मुक्त हो जाता है। हर जीव आत्मशान्ति के लिये भटक रहा है किन्तु यह शान्ति आत्मवान होने पर ही संभव है। आत्मवान होने के लिये भगवान् का आदेश है **'ध्यानयोग परो नित्यम्'** अर्थात् योगी को नित्य ध्यान योग परायण होना चाहिए।

सिद्धगुरु की कृपा बिना नित्य आत्मवान बने रहना अत्यन्त कठिन बात है। सिद्धगुरु के रोम–रोम से आत्मतेज की किरणें निकलती रहती है। योगियों के चरित्रों में इस प्रकार की बातें देखने को मिलती है। गणेशपुरी के महान योगी नित्यानन्द जी महाराज एवं उनके शिष्य स्वामी मुक्तानन्दजी के जीवन चरित्रों में इस प्रकार की घटनायें मिलती है जिसमें गुरु की दिव्य शक्ति का संचार शिष्य में होते रहने का वर्णन मिलता है। स्वामी विशुद्धानन्द

परमहंस भी एक शक्ति सम्पन्न महापुरुष हुये हैं वे वाराणसी में निवास करते थे। महामना गोपीनाथ कविराज प्रभृति उनके अनेक शिष्य थे। इन्होंने उनके शरीर के रोम कूपों से निरन्तर निःसृत होने वाली शक्ति व तेज का स्वयं अनुभव किया है। हमारे गुरुदेव भगवान अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के जीवन चरित्रों में शक्तिपात के दिव्य घटनाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव साधकों में होते देखा जाता रहा है। उनकी कृपा से श्रद्धालु साधकों में प्राणशक्ति का परमोत्कर्ष होते देखा गया है। शक्तिपात के फलस्वरूप, अलौकिक क्रियायें साधक में स्वतः ही होने लगती हैं साधक के नाड़ियों में व्याप्त रज तामस गुरुदेव के संकल्प से प्राणायाम की क्रियाओं से, विभिन्न मुद्राओं से तथा अन्यान्य यौगिक क्रियाओं से दूर हो जाता है। शक्तिपात से सतोगुण की वृद्धि होती है। सतोगुण की वृद्धि होने पर 'सत्वं' लघु प्रकाशकम् के सिद्धान्तानुसार साधक के अन्दर लघुता आती है तथा आत्मप्रकाश का क्षेत्र विकसित होता चला जाता है। आत्मशक्ति प्राणतत्व के रूप में शरीर में व्याप्त रहता है गुरुदेव की कृपा एवं शक्तिपात से तीन प्राण स्पन्दन एवं प्रवाह से नाड़ियों का शोधन होकर चित्त समाहित होने लगता है। गुरु कृपा से प्राणोत्थान हो जाने पर भी साधक को 'तत्पर' रहकर साधनारत रहना होता है अन्यथा विकास रुक जाता है और साधक की स्थिति पूर्ववत हो जाया करती है। उपनिषदों में प्राणोपासना पर बहुत बल दिया गया है। प्राणोपासना आत्मवान बनने की प्रथम सीढ़ी है। यह गुरुगम्य मार्ग है। योग साधना को 'प्रत्यक्षावगम' का मार्ग कहा गया है। दृढ़ क्रियात्मक पक्ष होने के कारण ही योगदर्शन को आत्मतत्व की उपलब्धि में एकमात्र साधन के रूप में माना जाता है।

योग मत में प्राण के साथ मन को संयुक्त करके अलग-अलग स्थानों पर धारणा द्वारा मन को एकाग्र किया जाता है। एकाग्रता का केन्द्र बिन्दु, मूलाधार चक्र आदि कोई भी चक्र बनाया जा सकता है। सिद्ध पद्धति में तो मूलाधार चक्र को ही धारणा का केन्द्र बिन्दु बनाकर आगे चलना होता है। इस पद्धति के अनुसार इन चक्रों पर क्रमशः धारणा करने से योगी का पृथ्वी, जल आदि महाभूतों पर अधिकार हो जाता है। यथाशक्ति सैकड़ों वर्षों तक स्थूल शरीर को विद्यमान रखकर साधना की पराकाष्ठा तक पहुँचना ऐसे योगियों का लक्ष्य रहा करता है। शरीरस्थ विभिन्न चक्रों को आधार बनाकर योगियों ने साधनायें की हैं और परमसिद्धि को पा गये। शैव योगी, नाथ योगी इसी पद्धति के योगी हैं जो भगवान् शिव के मतानुसार इन चक्रों का ध्यान करते-करते निःश्रेयस की ओर चलकर लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। इसलिये साधक को निरन्तर अन्तर्मुखी अथवा आत्ममुखी बनने का प्रयास करना चाहिये। जब तक व्यक्ति बहिर्मुखी होता है संसार में ही भटकता रहता है। स्थायी शान्ति उसे अपने केन्द्र आत्मा व शाश्वत घर में पहुँचने पर ही मिल सकती है। मन और प्राण आत्मोन्नति के दो प्रधान कारण हैं अतः साधक को इन शक्ति द्वय को पूर्ण विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। तभी गुरुदेव का 'आत्मवान भव' का उपदेश सार्थक होता है।

❋ ❋ ❋

हे प्रभु रामलाल.......

प्रेषक—राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

हे प्रभु रामलाल भगवान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले जा रहे प्राण, गुरु बिन कौन दिलावे ध्यान

जहाँ भी सुनूँ तुम्हारी चर्चा, जहाँ भी तेरी पूजा अर्चा
मेरा लग जाये वहीं ध्यान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले...........

मन का तामस गुण है भारी, इसमें जगी न जोत तुम्हारी
अब तक भरा घोर अज्ञान, बनाना निर्मल मेरे कान

कह दो कौन से तीरथ जाऊँ, कौन सी गंगा मल-मल नहाऊँ
कहीं तेरे सत्संग सा स्नान, बनाना निर्मल मेरे कान

उर में जो प्रकाश हो जाता, जग में प्रभुजी का यश गाता
जीवित एक यही अरमान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले..............

हे शंकर ! महावरदानी, संग में गणपति उमा भवानी
गुरुभक्ति का दो वरदान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले............

फिर से रामनवमी है आई, दूर अँधेरा करने आई
जो जग गया वही धनवान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले.........

चिन्ता शोक सभी मिट जाएँ, सब जन तेरा दर्शन पायें
प्रेम की चेहरे पर मुस्कान, बनाना निर्मल मेरे कान
रीते चले...........

मेरा अन्त समय जब आऐं, केवल तेरा सुमिरन छाये
गोद तुम्हारी निकले प्राण, बनाना मेरे निर्मल कान

रीते चले जा रहे प्राण, गुरु बिन कौन दिलावे ध्यान
हे प्रभु रामलाल भगवान, बनाना निर्मल मेरे कान

❊❊❊

विक्रम संवत् की प्रयोज्यता

पं० महेश बोहरे

राज्य शासन स्तर पर विकास प्राधिकरण उज्जैन द्वारा, महाराजा विक्रमादित्य से सेवित भगवान महाकाल की पुण्यवती नगरी अवंतिकापुरी में, वर्ष प्रतिपदा विक्रम संवत के शुभारंभ के क्रम में विक्रमोत्सव आयोजित किये जाने का सत्‌संकल्प स्तुत्य होकर संस्कृति पोषक है, इस हेतु विकास प्राधिकरण अध्यक्ष मोहन यादव जी के सोच एवं प्रयास को साधुवाद।

संकल्पित भाव से आयोजित किये जा रहे विक्रमोत्सव की रूप रेखा में मोहन यादव जी ने संस्कृति एवं साहित्य के पोषक गुणी एवं विद्वत् समाज के वर्तमान लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्तियों को अपना मार्गदर्शक बनाकर इस कार्ययोजना को मूर्तरूप दिया है। इससे यही प्रतीत होता है कि मोहन यादव जी को विक्रमोत्सव आयोजन की प्रेरणा महाराजा विक्रमादित्य द्वारा ही दी गई है।

सांस्कृतिक गरिमा पूर्ण विक्रमोत्सव के आयोजन में, भारत में विक्रमाब्द के प्रवर्तक महाराजा विक्रमादित्य के नाम से प्रचलित विक्रम सम्वत के शुभारंभ एवं समापन को दर्शाने वाले विभिन्न पचांगों को सम्पादित एवं प्रकाशित करने वाले गणितज्ञ पंचांग कर्ताओं का सम्मेलन भी, काल गणना में निरन्तर प्रयुक्त हो रहे पंचांगों में शनै–शनै व्याप्त हो रही विभिन्न भ्रांतियों को दूर करने के कारगर उपाय एवं सुझावों के द्वारा सम्मेलन सार्थक सिद्ध होगा ऐसी अपेक्षा भारतीय संस्कृति के सतत हितवर्धन सहित लोक कल्याण की भावना से की जाती है।

भारतीय काल गणना में उसकी प्रमाणिकता शास्त्र सम्मति पर आधारित है। यह सृष्टि अनंत युगों से प्रचलित है। कालगणना में पौराणिक व्यवस्था अनुसार लम्बे–लम्बे युग–मान निर्धारित हैं जिसमें हम कलियुगादि की चर्चा करते हैं। किन्तु ये लम्बे–लम्बे युगमान, सृष्ट्याधार बोध कराने में तो सहायक हो सकते हैं, व्यवहारिक रूप से दैनंदिन जीवन में इनका कोई उपयोग नहीं रहता है तथापि पंचांगकर्ता गणितज्ञ अपने पंचांगों में युगाब्द बोधक चतुषयुगमान को भी अवश्य दर्शाते हैं जिनमें कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग एवं कलियुग हैं। युगाब्द के दृष्टिकोण से वर्तमान में हम उक्त वर्णित चार युगों में से कलियुग के भोगमान आधीन सृष्ट्यापन कर रहे हैं जिसके ५१०६ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं तथा अभी ४२६८९४ वर्ष कलियुग का भोगमान शेष है।

देश विदेश में प्रचलित कालगणना के अनेकानेक सन्–संवत निर्धारित है। सामान्य रूप

से एक वर्ष से अधिक अवधि के लिये प्रयुक्त कालगणना को हम दशक, शताब्दी एवं सहस्त्राब्दी में दर्शाते हैं। दशक से भी कम अवधि की कालगणना को प्रचलित करते हुये स्वतंत्रता प्राप्ती के पश्चात हमारे देश में कार्ययोजना के दृष्टिकोण से पंचवर्षीय योजनाओं की कालावधि का प्रारंभ हुआ, इसी प्रकार पंचवर्षीय चुनाव युग भी लोकतांत्रिक युगाब्द के अंतर्गत प्रयुक्त हुआ है।

ईसवी सन की कालगणना विदेशी कालगणना है जो हमारी भारतीय कालगणना के विक्रम संवत के बाद की है। समूचे भारत का जनमानस व्यवहारिक रूप से अपने लौकिक जीवन में, पारिवारिक एवं सामाजिक आयोजनों, उत्सवों, धार्मिक परंपराओं त्यौहारों आदि के निर्वहन में विक्रम संवत को ही आधार मानकर अग्रसर होता है। हमारे देश में ज्योतिष शास्त्र के गणितज्ञ शास्त्रियों के द्वारा ग्रह नक्षत्रों के संचरण के आधार पर कठिन परिश्रम के बाद पंचांगों का निर्माण, संपादन, प्रकाश का दुरूहकार्य समय से पूर्व सम्पन्न करके बाजार की वितरण प्रणाली के द्वारा पंचांगों को लोगों तक पहुँचाया जाता है। तथापि प्रशासनिक क्रिया कलापों में त्यौहारों के अवकाशों की घोषणा में ईसवी सन् को ही व्यवहारिकता दी जा रही है जो कि विदेशी कालगणना का प्रतीक है। प्रशासनिक रूप से हम ईसवी सन् के प्रचलन के लिये बाध्य नहीं हैं क्योंकि राष्ट्रीय संवत् की मान्यता शासन तंत्र द्वारा शालीवाहन शक संवत् को दी गई है जो लोकाचार में अधिक व्यवहारिक नहीं है। यह हमारे देश में आजादी के बाद की एक विडम्बना मात्र है।

विक्रमोत्सव में म०प्र० राज्य शासन की भागीदारी प्रशंसनीय, सराहनीय एवं अभिनंदनीय है, इसमें उज्जैन विकास प्राधिकरण के इस सत्संकल्प के निर्वहन में की गई जनभागीदारी भी प्रेरक होकर सतत् अनुकरणीय है। म० प्र० राज्य शासन संस्कृति विभाग का यह अत्यंत अभिनंदनीय योगदान उस समय जन–जन में वंदनीय एवं स्तुत्य हो जावेगा जब म० प्र० राज्य शासन विक्रम संवत को मध्यप्रदेश राज्य में राज्य का प्रशासनिक संवत घोषित कर देगा। साथ ही भारत सरकार को भी विधायिका के प्रस्ताव के साथ प्रेरित करते हुये केन्द्र सरकार द्वारा समूचे भारत में विक्रम संवत के आधार पर एक राष्ट्रीय केलेन्डर जारी करने एवं उसी राष्ट्रीय केलेन्डर के मान से प्रशासनिक क्रियाकलापों को संचालित करने की कार्यवाही भी की जावे तो हमारा विक्रमोत्सव ही सार्थक नहीं होगा अपितु हम प्रदेश और देश में महाराजा विक्रमादित्य की शासन व्यवस्था एवं न्यायप्रियता का भी व्यवहारिक रूप से आभास कर सकेंगे।

"कुर्यात सदा मंगलम्"

❊ ❊ ❊

जासु कृपा नहिं कृपा अघाती

डा० रुद्रदत्त चतुर्वेदी (गोरखपुर)

जुलाई १९५६ से पूज्यपाद श्री गुरुदेव चन्द्रमोहन जी के सानिध्य में आया और मुझे यह सौभाग्य मिला कि श्री गुरुदेव ने अपने कर कमलों से "नेति" प्रारंभ करा कर "न इति" शुद्ध सार्थक किया। तब से श्री गुरुदेव के माध्यम से करुणासागर श्री प्रभुजी की सदैव कृपा दृष्टि होती रही है।

प्रस्तुत प्रसंग अगस्त ०४ का है। राजकीय महाविद्यालय में होने के कारण प्राचार्य द्वारा वार्षिक चारित्रिक प्रविष्टि दी जाती है जो पदोन्नति आदि में सहायक होती है। मेरे प्राचार्य पद छोड़ने के उपरान्त जो प्राचार्य मिले हैं वे १९९० की एक घटना से नाराज थे अतः उन्होंने निरन्तर तीन प्रतिकूल प्रविष्टियाँ देकर यह संस्तुति लिख दी कि इन्हें सत्रलाभ (उ.प्र. में बीच सत्र में रिटायर होने वाले को पूरा सत्र मिलता है) न दिया जावे। प्रभुजी की कृपा से निदेशालय में एक ऐसे अधिकारी का स्थानान्तरण होकर आया जो इन प्राचार्य की परपीड़न शैली से अवगत था अतः फाइल वहाँ से तो सुधार दी गई परन्तु इतना विलम्ब हुआ कि उच्च न्यायालय, लखनऊ का द्वार खटखटाना पड़ा।

दैवात् (बाई चांस) वहाँ भी केस की तारीख ३१ अगस्त थी जो अवकाश ग्रहण का अंतिम दिन था। मैं न्यायालय में उपस्थिति था परन्तु मेरे वकील अन्य कोर्ट में थे। अचानक जज ने जोर से कहा– "कहाँ हैं चतुर्वेदी"। मैं हड़बड़ा कर आगे बढ़ा और कहा जी सर ! न्यायमूर्ति झल्लाकर बोले– कहाँ से आ गये आप। मैंने कहा कि मेरा केस नं० ६ है और सत्र लाभ के लिए आदेश हेतु आया हूँ। मन में श्री प्रभु जी से प्रार्थना जारी थी– बात प्रतिष्ठा की भी थी। अचानक न्यायमूर्ति मुस्कराये बोले–भले आदमी यह केस नं० तीन है। चतुर्वेदी ऐडवोकेट की उपस्थिति पूछ रहा था। जायें पीछे खड़े हों। प्रत्येक व्यक्ति मुझे घूर रहा था और कुछ ने संतोष व्यक्त किया कि मैं अवमानना (कन्टेम्प्ट ऑफ कोर्ट) से बच गया।

अब अनिष्ट की आशंका बढ़ गई। परन्तु स्मरण भी बढ़ गया। ४–५ मिनट में मेरा केस आ गया। वकील नदारत। स्वयं न्यायमूर्ति ने मेरे द्वारा लगाई गई राजाज्ञा का संदर्भ देते हुए सरकारी वकील से पूछा– "संलग्नक दो पर कोई आपत्ति" उत्तर था– "नहीं" और मेरे पक्ष में आदेश हो गया।

अब सोचता हूँ कि केस नं० ३ में वकील चतुर्वेदी को अनुपस्थित कराकर और मुझे आगे बढ़ाकर श्री प्रभुजी ने न्यायमूर्ति के संज्ञान में मेरा केस ला दिया और इस प्रकार केस नं० तीन की तरह मेरी फाइल नीचे न रखवाकर न्यायमूर्ति से मेरी वकालत भी करा दी।

आज भी सोचता हूँ कि वे कल्पनातीत रीति अपनाकर रक्षा कर लेते हैं। इति।

''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति''

(भाग-११)

–कु० रुक्मिणी वर्मा (सहारनपुर)

''संस्कार शक्ति व साधना शक्ति'' प्रस्तुत लेख में मानव के चित्त पर किन–किन संस्कारों का प्रभाव पड़ता है, जिस कारण उसका वैराग्य परिपक्व नहीं हो पाता और उसकी साधना में व्यवधान आकर वह अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रह जाता है, इस प्रसंग को हल करने का भरसक प्रयास करते हुए क्रमशः गर्भ के संस्कार, माता–पिता व पूर्वजों के संस्कार, विद्या के संस्कार, भूमि के संस्कार, अन्न–जल के संस्कार तथा मित्रमंडली के संस्कार आदि का वर्णन किया गया। अब प्रसंग आता है कि यदि इन संस्कारों को ध्यान में रखते हुए साधना की गति को बढ़ाया जाये तो क्या संस्कार चक्र तीव्र गति से क्षीण हो सकता है ? उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है कि 'हाँ', परन्तु संस्कार चक्र अधिक प्रबल हो तो सफलता मिलने में काफी विलम्ब हो सकता है, क्योंकि पूर्वजन्म का कोई पाप इस प्रकार भुगतान काल में आता है कि साधना की गति ठीक होते हुए भी लक्ष्य प्राप्ति शीघ्र नहीं हो पाती। अतः अब प्रसंग आता है पूर्वकृत कर्म के संस्कार का।

चित्त की वृत्ति के निरोध को योग कहा गया है। हमारा चित्त केवल इसी जन्म के कृत कर्मों के संस्कारों का ही रूप नहीं है, अपितु जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से इस चित्त रूपी मन्दिर में निवास करते हैं, जो जो संस्कार भुगतान काल से गुजरता है, उस–उस संस्कार को ही इस निवास स्थल से मुक्ति मिलती है और कभी–कभी तो भुगतान काल एक प्रबल संस्कार का हो रहा हो और संयम–नियम व धैर्य जीवन में न हो तो गलत कार्यों के कारण भुगतान काल में अन्य संस्कार बन जाते हैं। इस प्रकार चित्ताशय से एक भुगतान संस्कार निकला और उसकी जगह १५–२० संस्कारों ने निवास स्थान पा लिया। इस प्रकार हमारा चित्त उस ट्रेन की भाँति हो जाता है, जिसमें किसी स्टेशन पर एक यात्री उतरता है और २०–२५ यात्री उसी स्टेशन पर लद जाते हैं उसी ट्रेन में। अतः चित्त की वृत्ति का निरोध सहज सम्भव नहीं, फिर भी बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाये तो साधना में संयम–नियम; धैर्य व साहस जैसे दिव्य गुण आकर चरम लक्ष्य की ओर गति प्रखर हो सकती है। अतः विचार करते हैं पूर्वकर्त कर्म संस्कार पर–

पूर्वकर्त कर्म के संस्कार

अगर पूर्व जन्म का कोई संस्कार ही चित्त में न रह गया हो तो जन्म भी नहीं क्योंकि कर्मों के अनुसार ही योनि तैयार होती है कि अमुक जीव पशु योनि या पक्षी योनि, दानव या मानव योनि के लायक है। जब कर्म व कर्म का संस्कार ही न रह गया हो तो समझो सदेह मुक्ति है, देह छूटने पर पूर्ण मुक्ति। अतः मिश्रित पाप–पुण्य या केवल पुण्य ही पुण्य अथवा पाप ही पाप के संस्कारों के आधार पर हम सांसारिक जीवों के रूप में आते हैं। अर्थात् देह वद्य उसे ही होना पड़ता है, जिसका संस्कार चक्र शेष है। अब उस संस्कार चक्र का वेध करने के लिये दो ही उपाय हैं, पहला यह कि पूरा–पूरा भुगतान एक–एक संस्कार का होता चला जाये परन्तु साथ में निष्काम कर्मयोग का प्रबल अभिधान नितान्त आवश्यक है। दूसरा यह कि संस्कार चक्र साधना की तीव्र गति से काटा जाये अर्थात् भुगतान काल को बहुत ही सूक्ष्म पैमाने पर ले लिया जाये या दूसरा संस्कार इतना तीव्र संवेग धारण करले कि चित्त में पड़े संस्कारों का भुगतान काल आ ही न पाये और वे संस्कार चित्त में पड़े–पड़े इतने दुर्बल हो जायें कि अब भागप्रदान की उनकी शक्ति नष्ट प्रायः सी हो जाये। दोनों ही उपाय उत्तम हैं परन्तु कहने में सरल लगते हैं, जब इन उपायों को स्वयं पर लागू किया जाता है तब पता चलता है कि लिखना, कहना, पढ़ना, बतियाना या उपदेश झाड़ना जितना सरल है उतना व्यवहार में कहीं अधिक कठिन है। दूसरों को तो कोई भी उपदेश दे ले या सिद्धान्त–परक लेख लिख दे, किसी पुस्तक की रचना तक कर डाले, यह कोई बड़ी बात नहीं। एक विद्वान बनना बड़ा सरल परन्तु एक लायक शिष्य बनना, सच्चा साधक बनना बहुत कठिन है। अब पहला उपाय जिसमें बताया गया कि भुगतान करते चलो व भुगतान काल में निष्काम कर्म करते चलो। अब इसी बात को ले लो कि साथ में निष्कामता हो, तो क्या यह सहज है? दुनिया इसी जगह तो कमजोर है। निष्कामता तो लाखों नहीं बल्कि करोड़ों में किसी एक के जीवन में पूर्णतया आ पाती है। नहीं तो कुछ न कुछ आशा, अभिलाषा का तार जुड़ा ही रहता है। अगर जीवन में निष्कामता आ जाये तो व्यक्ति को फिर कोई देव पूजा या ईश पूजा की आवश्यकता नहीं। निष्काम कर्म कर्मयोग है, जो भगवान को अतिशय प्रिय है जैसा कि श्री भगवान ने गीता में कहा भी है–

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानम् विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।।

अर्थात् ज्ञान का अभ्यास अति श्रेष्ठ है। यदि ज्ञान का अभ्यास भी न हो सके तो ज्ञान

के अभ्यास से ध्यान श्रेष्ठ है। ध्यान का अभ्यास भी यदि कठिन जान पड़े तो ध्यान से भी उत्तम रास्ता है, सभी कर्मफलों का त्याग करे क्योंकि कर्मफल त्याग से तुरन्त शान्ति प्राप्त होती है।

परन्तु यही होना सम्भव नहीं हो पाता मानव के लिये। अपने पूर्ण जीवन में किसी न किसी बात की आशा व निराशा जीवन में इस प्रकार लगी रहती है कि कोई न कोई सकाम कर्म का ताना-बाना मकड़ी के जाल की तरह व्यक्ति बुन ही डालता है और इस बात का वह अहसास तक नहीं कर पाता और जब उनसे बात की जाये तो बड़े ही मस्त अन्दाज में हवा में बात फेंकते हुए इस प्रकार अपने नवाबी अन्दाज में बात करेंगे कि "हमें कोई परवाह नहीं, हम किसी बात की चिन्ता नहीं करते, ना हमें किसी बात का डर, हमें किसी से कुछ नहीं चाहिये, हम किसी के दबाव में नहीं है, हमें किसी सलाह की जरूरत नहीं आदि आदि"। और यदि उनकी आँखों में दार्शनिक ढंग से देखा जाये तो उनका जीवन अत्यन्त तनावग्रस्त, चिन्तित, व्यथित व प्यासा दिखाई देता है। परन्तु आदत पड़ गयी है, दूसरों के आगे शान बघारने की। कुछ नम्र बोल देंगे तो मानो शायद कद छोटा न हो जाये, मूंछे व नाक नीची न हो जाये। व्यर्थ ही नाक, मूँछ व गर्दन ऊँची करने की अभिमानता का परिचय दे डालते हैं अपने आलीशान शब्दों में। निष्काम कर्मयोग में जीना हँसी खेल नहीं है। किसी भी मार्ग चलो संघर्ष ही संघर्ष है। परीक्षाओं का जाल बिछाकर छोड़ रखा है परमात्मा ने हर मार्ग की एक-एक गली में। जब तक मोह की एक-एक कतरन को ज्ञान रूपी देह से नहीं उतार देता, लोभ का एक-एक बर्तन जब तक छीन कर फेंक नहीं देता, काम की एक-एक बूँद जब तक वृत्तियों से नहीं भगा देता, ईर्ष्या का ज्वार जब तक कठिन परिस्थितियों में डाल-डालकर तपा-तपाकर भस्म नहीं कर देता, द्वेष का बुखार जब तक समर्पण व नम्रता की छाया में ठण्डा नहीं कर देता, अहंकार को जब तक लोहे के चने चबवा-चबवाकर तोबा नहीं करा देता, तब तक उसकी एक झलक तक देखने को नहीं मिलती। इसलिये संघर्ष है दुनिया में, राम में मन जाये या काम में। बिना संघर्ष न दुनिया के मजे, न दुनिया वाले का सुख। कवि जगदीश गुप्त जी ने बिल्कुल ठीक लिखा है-

सच हम नहीं, सच तुम नहीं, सच है महज संघर्ष ही।...........
अपने हृदय का सत्य, अपने आप हमको खोजना।
अपने नयन का नीर, अपने आप हमको पोंछना।
आकाश सुख देगा नहीं, धरती पसीजी है कहीं ?

जिससे हृदय को बल मिले है ध्येय अपना तो वही,
सच हम नहीं, सच तुम नहीं, सच है महज संघर्ष ही।

जब तक संघर्ष करते–करते नींबू की तरह जीवन निचुड़ नहीं लेता तब तक आत्म समर्पण भी हर कोई नहीं करता। अगर कहीं पूर्ण समर्पण का दृष्टान्त देखने में भी आया तो उसके पीछे अवश्य ही पूर्व जन्म की कोई घनघोर तपस्या का संस्कार छिपा होगा। बिना समर्पण के निष्काम कर्म हो ही नहीं सकता। बिना समर्पण के न कोई कबीर बन सकता है न तुलसीदास, न मीरा न शबरी। पूर्ण समर्पण के बिना वह अपनी परछाई भी नहीं देता। जब समर्पण हो जाये तो जीव जीव रहेगा ही नहीं, ब्रह्ममय हो जायेगा। ऐसी हालत में तो बस यही कहेगा कि–

मैं लेन आयी तुझे, तूने घेर ली मुझे।
तू छोड़ दे मुझे तो मैं ले चलूँ तुझे।।

अर्थात् जिस प्रकार कोई पनिहारिन कुँए पर जल भरने जाती है और जल भरते–भरते सिर पर घड़ा रख भी नहीं पाती कि बादलों से रिम–झिम, रिमझिम पानी बरसकर चारों तरफ जल ही जल हो जाता है, ऐसे में सिर पर मटका भरा हुआ रखकर चलते हुए उस पनिहारिन का चलना मुश्किल हो जाता है क्योंकि कपड़े भी जल में भीग चुके, चलते हुए पाँव फिसलने का डर। जिसे लेन आयी थी (जल को) अब उसी ने (जल ने) उसे चारों तरफ से घेर लिया, अब प्रार्थना करती है कि तू थोड़ा बरस ताकि मैं तुझे सही सलामत घर ले चलूँ। अर्थात् लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल। परन्तु समर्पण करने में हर कोई सफल नहीं। सारे दिन खाओ, पीओ, ऐश करो, घूमो, फिरो, मस्ती करो और जब ब्रह्ममूर्त हो या सँध्या बेला हो तो चादर तान कर सो जाओ, मन आया ईश्वर को हाथ जोड़ लिये नहीं तो वो भी छुट्टी।

इस प्रकार की जिन्दगी जीने वालों के जीवन में तो समर्पण हो ही नहीं सकता। जो संयम नियम में बँधते हैं, अपना आधार ठीक रखते हैं, उनके अन्दर की छिपी आसक्तियाँ, क्रोध की ज्वालायें, 'मैं तपस्वी' इस अहम् की बू, चंचलता, राग–द्वेष की बिजलियाँ उन्हें दृढ़ भूमि नहीं दे पाती क्योंकि समर्पण वालों में ये लक्षण नहीं पाये जाते। जरा सा त्याग व कष्ट उठाने वाली बात पर जो विवेक खो बैठते हैं, उनके जीवन में भी समझो अभी समर्पण नहीं आया। २५–२५ साल तक मौन व्रत रखने वालों को भी उसका (परमात्मा का) मिलना सहज सम्भव नहीं। पूरा जीवन बिता देते हैं बहुत से साधू तपस्या करते–करते, परन्तु समर्पण नहीं

हो पाता इसलिये उस रसीले दिव्य परमानन्द रस से अछूते रह जाते हैं, बदले में 'मैं साधक,' 'मैं तपस्वी', 'मैं सन्यासी' यह अभिमान और पल्ले पड़ जाता है। अतः निष्कामता हो पाना तो केवल भक्त या पूर्ण ब्रह्मज्ञानी (जिसने उस तत्व में लयता प्राप्त कर ली हो), पूर्ण वैरागी में ही सम्भव है। नहीं तो–

भक्ति भाव भादों नदी, सभी चली गहराय।
सरिता सोई सराइये, जो जेठ मास ठहराय।।

अर्थात् सभी नदियाँ उमड़–घुमड़ कर लहराती हुई, इठलाती हुई सागर की ओर बढ़ती है। भादों के महीने में सभी नदियाँ जल से उमड़कर बहती हैं परन्तु उसी नदी की प्रशंसा की जानी चाहिये, जो जेठ मास में भी ऐसे ही जल से भरपूर रहे। इसी प्रकार भक्ति भी भावुकता में देखा–देखी से उमड़ आना अलग बात है, परन्तु सभी कठिनाइयों–बाधाओं को पार करते हुए भक्ति साधना होती रहे, वही सत्य भक्ति है।

अधिकांश व्यक्ति प्रपंच रचा डालते हैं आध्यात्मिक मार्ग पर भी। अब पहला उपाय तो फल की आशा छोड़कर संस्कार भुगतान करते रहो, यह है, परन्तु भुगतान काल में नवीन कर्म बन जाने का पूरा–पूरा खतरा रहता है जिसमें ९९% व्यक्ति उलझे पड़े हैं। अब दूसरा उपाय है कि साधना की तीव्र गति से संस्कारों को सूक्ष्म में अपने ऊपर ले तथा इस प्रकार विपरीत संस्कार उत्पन्न करे कि पूर्व संस्कार का भोग काल आये ही नहीं। क्या ये सम्भव है? उत्तर है कि शत–प्रतिशत सम्भव है। परन्तु धैर्य, परिश्रम, उत्साह व श्रद्धा का होना नितान्त आवश्यक है। इस मार्ग में साधना की दृढ़ता चाहिये। इस विषय में एक प्रसिद्ध प्रसंग है–

काशी में एक ब्राह्मण बालक विद्या अध्ययन कर रहा था। वह साधना के द्वारा अतुलित शक्ति प्राप्त करके संसार रचना चाहता था। न जाने कितना अतुलित ऐश्वर्य चाहता था वह। धन उसके पास था नहीं। उसने गायत्री मंत्र का अनुष्ठान किया। पहला, दूसरा, तीसरा न जाने कितने अनुष्ठान करता चला गया। दिन–रात लगातार लगा ही रहता था। उसका एक अनुष्ठान छह महीने में पूरा होता था और एक अनुष्ठान में चौबीस लाख मन्त्रजाप होते थे। इस प्रकार उसने २३ अनुष्ठान कर डाले परन्तु कुछ नहीं हुआ, न धन ही मिला न शक्ति। चौबीस वर्ष तो उसने विद्याअध्ययन में लगाये और बारह वर्ष लगातार अनुष्ठान करने में लगा दिये। इस प्रकार छत्तीस वर्ष की आयु होने पर उसने सोचा कि अब धन भी मिला तो क्या फायदा और शादी करूँगा तो दो–चार साल बाद बच्चा होगा ४०–५० वर्ष की आयु तो ऐसे

ही बीत जायेगी। बूढ़ा हो जाऊँगा तो बच्चे कैसे पलेंगे। अतः अब विवाह करने से कोई फायदा नहीं। इस प्रकार उसने सन्यास दीक्षा ले ली। सन्यास की दीक्षा लेकर जब वह मंत्र जाप (गायत्री मंत्र) करने बैठा तो प्रकाश ही प्रकाश सर्वत्र दृष्टिगोचर हुआ और उस प्रकाश में गायत्री माँ प्रकट होकर कहने लगी कि बेटा वर माँगो। सन्यासी बोला माँ ! मैंने लगातार परिश्रम करके तेईस अनुष्ठान किये कि तुम मुझे वरदान दोगी– 'धनवान भव', 'पुत्रवान भव', ऐश्वर्यवान भव', तब तो तुम आयी नहीं, और जब मेरी इच्छायें मर गयी, मुझे वैराग्य हो गया, मुझे तुम्हारे वरदान की जरूरत नहीं रही, तब तुम मुझे दर्शन देकर कह रही हो, **''वरं ब्रूयात्''**।

तब गायत्री माँ ने कहा कि तुम्हारे आगे के जन्मों के चौबीस महापातक थे तुम्हारे साथ। तुम एक–एक अनुष्ठान करते गये और एक–एक महापातक कटता गया। तेईस अनुष्ठानों से तुम्हारे तेईस महापातक भस्म हुए, इसलिये अनुष्ठान का जो प्रभाव तुम्हें दिखना चाहिये था वह नहीं दिखा। यदि मैं पहले ही प्रकट हो जाती तो तुम न मुझे देख पाते, न झेल पाते। सन्यास की दीक्षा लेते ही तुम्हारा चौबीसवाँ महापातक दीक्षा लेते ही कट गया और अब प्रथम मंत्र के उच्चारण मात्र से ही मैं प्रकट हो गयी। ये सन्यासी थे 'विद्यारण्य स्वामी'। विद्यारण्यस्वामी ने ही 'पंचदशी' नामक महत्वपूर्ण व विश्वविख्यात ग्रन्थ की रचना की।

अब उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट विदित होता है कि मंत्र जाप की तीव्र साधना के संस्कार ने उसके २४ महापातकों के संस्कारों को भस्म कर दिया इसी प्रकार का एक प्रसिद्ध उदाहरण और है श्री मधुसूदन सरस्वती जी का।

'श्री मधुसूदनी टीका' श्रीमद्‌भगवद्‌गीता की जगत प्रसिद्ध टीकाओं में से एक है। एक बार श्री मधुसूदन जी ने 'गीता' के ऊपर 'टीका' लिखने का संकल्प किया और जैसे ही वे लिखने बैठे तो एक मस्त फकीर एका–एक द्वार खोलकर अन्दर आ गये और बोले, क्यों रे ! तू जिस 'गीता' पर टीका लिखने बैठा है, कभी उस गीतकार भगवान श्री कृष्ण को तूने देखा भी है या नहीं? पहले उनके दर्शन तो कर लेता, या वैसे ही उनके वचनों को स्पष्टीकरण विवरण लिखने को बैठ गया ? श्री मधुसूदन जी अद्वैतवादी थे। अतः बोले कि उनके दर्शन का हमारा कोई अभिप्राय नहीं है क्योंकि परमात्मा निराकार है व सब घट में एक हैं। परन्तु मस्त सन्यासी बोले,"नहीं ! पहले दर्शन करना चाहिये फिर उनके शास्त्र पर जो चाहो, लिखना चाहिये।" ऐसा कहकर उन्होंने श्री मधुसूदन जी को एक मंत्र दिया कि छह महीने तक इस मंत्र का अनुष्ठान करो, उनके दर्शन करके, मिलके फिर लिखना प्रारम्भ करो। श्री मधुसूदन जी ने छह महीने तक लगातार अनुष्ठान किया परन्तु भगवद् दर्शन नहीं

हुए। अनुष्ठान में कोई कमी रह गयी होगी यह सोचकर फिर दोबारा छह महीने का अनुष्ठान किया फिर भी प्रभु ने दीदार न दिया, इससे उनका मन खिन्न हो गया उन्हें आत्म–ग्लानि हुई कि एक वर्ष बिना बात बरबाद कर दिया, अब तक तो टीका लिख चुका होता। कहाँ सबमें ब्रह्मदर्शन करने वाला अद्वैत वेदान्ती मैं ! और पीछे पड़ गया भगवान श्री कृष्ण के? हे प्रभु ! दर्शन दो, दर्शन दो, व्यर्थ ही गिड़गिड़ाया। जो श्री कृष्ण की आत्मा, सो मेरी आत्मा।

अतः भ्रमण करके चित्त को ठीक करने के लिये दूर कहीं तीर्थ की ओर चले गये कि सामने से एक चमार आ रहा था वह श्री सूदन जी से बोला, "क्यों स्वामी जी ! हो गये अनुष्ठान, बस दो ही अनुष्ठान से थक गये व घबरा गये।" श्री मधुसूदन चौंक पड़े कि तुम मुझे नहीं जानते, मैं तुम्हें नहीं पहचानता, फिर तुम्हें मेरी इस गुप्त बात का कैसे पता? चमार बोला कि पहले यह बताओ, मेरी बात सच है कि नहीं? स्वामी जी ने कहा कि सच है, परन्तु तुम तो साधारण से होकर भी किसी अन्तर्यामी की भाँति बात कर रहे हो। चमार ने कहा कि नहीं स्वामी जी ! मैं कोई गुरु नहीं, योगी भी नहीं। मैंने एक भूत को वश में कर रखा है। उसी भूत ने तुम्हारी गुप्त बात मुझे बतायी। स्वामी जी ने कहा कि कृष्ण जी के दर्शन तो हुए नहीं, चल तेरे भूतड़े के ही दर्शन कर लूँ। बता ! तेरे भूतड़े के दर्शन का क्या उपाय है? चमार ने कहा कि स्वामी जी मेरा भूत मात्र तीन दिन में ही दर्शन देने आ जायेगा। यह लो मंत्र। श्री स्वामी जी ने उससे विधि भी पूछी और विधि–विधान के साथ तीन दिन तक अनुष्ठान किया। चौथे दिन वे चमार के पास गये कि भाई ! हमें तो तेरे भूत ने दर्शन दिये नहीं। लगता है तू झूठ बोला है। चमार ने कहा कि नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, मैं तो उसे रोज बुलाता हूँ, बात करता हूँ, जरा ठहरो ! अभी पूछकर बताता हूँ कि उसने आपको दर्शन क्यूँ नहीं दिये। वह एक तरफ गया और भूत से बात करके स्वामी जी के पास आकर बोला कि स्वामी जी! मेरा भूत कह रहा है कि जब स्वामी जी मंत्र जाप करने लगे तो मैं खिंचकर उनके पास जाने लगा, परन्तु उनका तेज मुझसे सहन नहीं हुआ, मुझे उनके चारों ओर और आग–आग जैसा लगा। उन्होंने 'ॐ' का, गायत्री मंत्र' का इतना अनुष्ठान कर रखा है कि उनके आध्यात्मिक तेज के आगे हम मलिन व दुरात्मा खड़े भी नहीं रह सकते। उनसे कहो कि धैर्य न त्यागें व दोबारा अनुष्ठान करें। श्री मधुसूदन जी को बड़ा आश्चर्य हुआ व अपने मंत्रजाप में श्रद्धा भी प्रगाढ़ हुई। अतः फिर से अनुष्ठान में रत् रहे और भगवान श्री कृष्ण का साक्षात्कार भी किया और प्रभु का आशीर्वाद लेकर तब टीका लिखी। उनकी वह टीका श्री 'मधुसूदनी टीका' कहलाई जो जगत प्रसिद्ध हुई।

इस उदाहरण से भी यही सिद्ध हुआ कि अनुष्ठान आदि चित्त के विक्षेप हटाकर उसे

शुद्ध करते हैं तथा अन्य संस्कारों का क्षय करते हैं। बस निष्ठा व श्रम का अधिष्ठान चाहिये। अब यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि हर कोई न तो इतना समय रखता न इतना तप कर सकता, तो क्या उनके संस्कार कट नहीं सकते? योगी श्री भर्तृहरि जी ने कहा कि जो व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के ईश्वरीय अनुसन्धान में लगा रहता है तो शनैःशनैः उसका पुण्य संचित होकर उसे इस तरह का अवसर भी प्रदान कर देता है, "पूर्व जन्म की तपश्चर्या से सिंचित कर्म ही सौभाग्य वश अवसर उपस्थित कराके फल की प्राप्ति कराते हैं-- " योगी श्री भर्तृहरि जी।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी भी यही कहते हैं कि--"अवसर भी उन्हीं को प्राप्त होते हैं जो सच्चे मन से ईश्वर की भक्ति में लगे रहते हैं।" उन्होंने अपने उपाख्यानों में दो प्रकार की भक्ति का जिक्र किया है वैधी भक्ति व राग भक्ति। वैधी भक्ति में उन्होंने कहा कि-- "इतना जाप करना होगा, उपवास करना होगा, तीर्थयात्रा करनी होगी, इतने उपचारों से पूजा करनी होगी, बलिदान देना होगा, यह सब वैधी भक्ति है। वैधी भक्ति का अनुष्ठान करते--करते क्रमशः रागभक्ति हो जाती है तब संसार बुद्धि बिल्कुल चली जायेगी और सोलह आना मन उन्हीं पर लग जायेगा, तब वे मिलेंगे। --स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी।

श्री रामकृष्ण परमहंस जी ने अपने विषय में स्वयं बताया कि मेरी इस अवस्था के बाद मुझे केवल ईश्वरीय-बातें सुनने की व्याकुलता होती थी। भागवत, रामायण, महाभारत कहीं--कहीं इनका पाठ हो रहा है, कहीं--कहीं भजन--कीर्तन हो रहा है, यही सब ढूँढता फिरता था। ज्यादा शराब पी लेने से मतवाला होश नहीं सम्भाल सकता। दुअन्नी भर पीने से कामकाज कर सकता है। ईश्वर की ओर जितना बढ़ोगे उतना ही वे कर्म घटाते रहेंगे, डरो मत। --स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी।

इस बात को स्पष्ट करते हुए परमहंस जी ने गर्भस्थ महिला का उदाहरण दिया कि सास जब यह देखती है कि बहू के पाँव भारी है तो वह धीरे--धीरे उसके काम घटाती चलती है। नवें व दसवें महीने में काम छूने भी नहीं देती और लडका होने पर बहू केवल लडके की ही देखभाल में लगी रहती है, उस समय रत्ती--रत्ती काम सास ही करती है। अर्थात् जब ईश्वर का नाम सच्चे मन से लिया जाता है, तब ईश्वर उसको सांसारिक प्रपंचों से स्वयं दूर हटाते चलते हैं। यदि साधक साधना में मन लगाये ही रहे तो वे उसे पूर्ण अवसर देते हैं।--स्वामी रामकृष्ण परमहंस

किसी भक्त के यह पूछने पर कि यदि ईश्वर का नाम लेते--लेते भी उनमें अनुराग न

हो अर्थात् रागा–भक्ति न हो तो फिर क्या करें ? इस उत्तर में परमहंस जी ने कहा कि पौधे को चारों ओर से रूँधना पड़ता है, नहीं तो बकरी खा लेगी।" —स्वामी रामकृष्ण परमहंस। आशय में स्वामी जी समझाते हैं कि "उनके गुणगान में लगे रहना चाहिये, सत्संग आदि करते रहना चाहिये, बीच–बीच में भक्तों और साधुओं से मिलते रहना चाहिये, कभी–कभी निर्जन में जाकर ईश्वर का चिन्तन बहुत जरूरी है। संसार में दिन–रात विषयों के भीतर पड़े रहने से ईश्वर में मन नहीं लगता। शुरू–शुरू में कसकर मेहनत करनी पड़ती है, फिर ईश्वर कृपा मिलने लगती है। अर्थात् शुरू–शुरू में ही गिरने का डर है क्योंकि "पुत्र यदि पिता का हाथ पकड़कर चले तो गिर भी सकता है परन्तु पिता पुत्र का हाथ पकड़े तो फिर गिरने का भय नहीं।" स्वामी जी समझाते हैं कि एक बार कृपा मिल जाये तो फिर कोई संशय व भय नहीं रहता। कामिनी और कांचन में ही प्रीति रखने वालों की भक्ति कभी दृढ़ नहीं होती। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि–ज्ञान का अनुशीलन करते रहना चाहिये स्वाध्यायरत रहना चाहिये और साधना भी करते रहना चाहिये तो वैराग्य एक न एक दिन होकर ही रहेगा। जो लोग किसी न किसी ऐसे उद्यम में लगे ही रहते हैं जो ईश भक्ति से सम्बन्ध हो तो एक न एक दिन उन पर विशेष कृपा होती ही है। कुछ लोग कुछ बाधाओं या कठिनाइयों में घिरकर फिर से कामिनी–काँचन में वृत्ति लगा देते हैं उन्हें ऐसा न करके दृढता से ईश चिन्तन में लगे ही रहना चाहिये। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं कि–

"बाधा जितनी अधिक हो, उतना ही अच्छा है। बाधा पाये बिना क्या नदी का वेग बढ़ता है ? बाधा ही सिद्धि पाने का पूर्व लक्षण है। अतः बाधाओं से घबराकर निर्णीत कार्य मत छोड़ो, यही उत्तम साधना है।"

सच्चे साधक विपत्ति से नहीं घबराते। क्रांतिकारी रूसो के ग्रन्थों से सभी सभ्य देश परिचित हैं, वे आरम्भ में सामान्य नौकर तक रहे। उनका कहना है कि विपत्ति के स्कूल में मैंने सबसे अधिक समय तक शिक्षा ग्रहण की है; उतनी शिक्षा मुझे अन्य स्कूलों में नहीं मिली। अतः अपने लक्ष्य में लगे रहना चाहिये। वैज्ञानिक एडीसन कहते हैं कि "मैं कोई नशा नहीं करता, मेरा ध्यान केवल मेरे कार्य की ओर रहता है। एडवर्ड एवरेट लिखते हैं कि– प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में वे सब साधन विद्यमान हैं, जिनसे वह अपने को उपयोगी, कीर्तिवान और समृद्ध तथा सुखी बना सकता है। बुद्धि को उचित मार्ग पर लगाने, प्रत्येक अवसर के लिये गृद्ध–बुद्धि रखने, विकारों को तुच्छ समझने और इन्द्रियजनित सुख–भोगों को घृणा की दृष्टि से देखने से ही सारे कार्य पूरे हो सकते हैं। महान दार्शनिक सिसरो भी कहा करते

थे कि "जो समय अन्य व्यक्ति जनता के दिखावे और शारीरिक तथा मानसिक विश्राम में व्यय करते हैं, वही समय मैं तत्व–ज्ञान के चिन्तन में लगाता हूँ।" मोजार्ट ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'रेक्यू' अपनी मृत्यु शैया पर पड़े–पड़े लिख दी थी। अतः जो व्यक्ति अपने ध्येय के लिये उद्यम करता रहता है, उसे अवसर व सहायता तथा यश ईश्वर की ओर से पुरस्कार के रूप में अवश्य मिलती है। जिनके पास किसी न किसी विषय–वस्तु के लिये विशेष गुण होता है, इस प्रकार की सहायता व अवसर भी ईश्वर उन्हीं को देता है।

उदाहरण के तौर पर रामकृष्ण परमहंस जी का भक्ति में विशेष मन था और वे अधिक प्रेमीभाव में रहने लगे, पूजा आदि भी वह मुश्किल से कर पाते थे, भाव मग्न हो जाते थे। हीरे को परखने वाला जौहरी निकल ही आता है। रानी रासमणि के जामाता श्री मथुराबाबू ने यह भाव अच्छी प्रकार ताड़ लिया और शीघ्र ही उन्होंने उनकी सेवाशुश्रुषा का उचित प्रबन्ध कर दिया। इतना ही नहीं, बल्कि पुजारीपद पर दूसरे ब्राह्मण को नियुक्त करके उन्हें अपने भाव में मग्न रहने का पूरा–पूरा अवकाश दे दिया। साथ ही श्री रामकृष्ण के भानजे श्री हृदय राम को उनकी सेवा आदि का कार्य सौंप दिया। इस प्रकार की सहायता केवल अलौकिक विषय में ही नहीं, सांसारिक क्षेत्र में भी ईश्वर देता है। उदाहरण के लिये– एण्टोनियो नाम का एक लड़का फैलेरा नाम के धनी व्यक्ति के घर में बर्तन मांजने का कार्य करता था। जब भी उसे घर के काम–काज से फुर्सत मिलती तो वह एक मूर्तिकार की दुकान पर चला जाता, वह दुकान घर के पास थी। एण्टोनियो बिल्कुल अनपढ़ था, परन्तु उसमें हर बात को बड़े ध्यान से देखने का गुण था। वह भी बिना किसी पारिश्रमिक लिये पत्थर काटना सीखने लगा और धीरे–धीरे मूर्तियाँ बनाने में कुशल हो गया।

एक दिन उसके मालिक के घर बड़े गणमान्य व्यक्ति, व्यापारी व राज्य के बड़े–बड़े अधिकारी आये। जिस बड़े हॉल में खाने की बहुत बड़ी टेबल रखी हुई थी, उसे सजाने का काम एक विशेष बैरा कर रहा था। टेबल के बीचोंबीच सजावट की एक मुख्य वस्तु तैयार करते समय बैरे से वह चीज बिगड़ गयी। अतिथियों के आने का समय ज्यादा नहीं रह गया था। बैरा बुरी तरह परेशान कि अब कम समय में कुछ भी नहीं हो सकता। एण्टोनियो ने कहा कि मैं कुछ करूँ ? बैरे ने लापरवाही से कहा कि तुम ही क्या करोगे ? करना चाहो करके देख लो। एण्टोनियो ने बहुत सारा मक्खन मँगवाया और जमे हुए मक्खन से तुरन्त टेबल पर एक सुन्दर व आकर्षक शेर की मूर्ति बना दी। अतिथि भोजन करने बैठे। उनमें एक मूर्तिकला का विशेषज्ञ भी था। उन सबका परन्तु विशेष तौर पर विशेषज्ञ का ध्यान शेर की मूर्ति पर जा रहा था। आखिर वह पूछ ही बैठा कि यह मूर्ति किसने बनाई है ? बैरे ने

एण्टोनियो की ओर इशारा कर दिया कि इसने बनाई है। विशेषज्ञ ने कहा कि यदि इस व्यक्ति को मूर्तिकला की नियमित शिक्षा दी जाये तो यह एक दिन विश्व प्रसिद्ध मूर्तिकार बन सकता है। एण्टोनियो के मालिक ने उसी समय सबके सामने यह घोषणा कर दी कि इस विषय के अध्ययन के लिये जहाँ भी आवश्यकता होगी मैं इसे वहीं भेजूँगा और इसका सारा खर्च मैं स्वयं उठाऊँगा। आज वही मूर्तिकार कैनोवा के नाम से प्रसिद्ध है और विश्व–विख्यात मूर्तिकारों में गिना जाता है। अगर उस व्यक्ति के अन्दर वह योग्यता न होती तो वह बूढ़ा होने तक रसोईघर में बर्तन ही मांजता रहता। किसी कार्य में निष्ठा पूर्वक लगे रहने के अभ्यास से योग्यता कायम होती है और उस योग्यता को प्रतिभा बनाकर संसार में सबके सम्मुख प्रकट करने के लिये ईश्वर उसे समय, सहायता और सहयोगी ये तीनों प्रदान करता है।

ध्यान रखें आकस्मिक घटनायें भी उन्हीं के काम आती हैं, जिन्हें पहले से ही ज्ञान हो अन्यथा घटना दुर्घटना बन जाया करती हैं यदि मदालसा के पुत्र को माँ द्वारा दिया हुआ ज्ञान पहले से ही न होता तो वैराग्य पथ पर आना मुश्किल था। मदालसा के चार पुत्र थे, विक्रान्त, सुबाहु, शत्रुमर्दन और अलर्क। तीनों पुत्रों को बचपन से शिक्षा देते–देते रानी मदालसा ने ब्रह्मज्ञानी बना दिया और तीनों पुत्र विरक्त होकर जंगलों में चले गये। चौथे पुत्र को भी मदालसा वही पाठ पढ़ाने लगी परन्तु उनके पति राजा ऋतुध्वज ने उनसे कहा कि यदि तुम इसे भी आत्मज्ञान में प्रवीण करके विरक्त कर दोगी तो मेरा तो वंश ही मिट जायेगा। अतः इसे आत्मज्ञान की शिक्षा मत दो। मदालसा ने उसे गृहस्थ धर्म की शिक्षा भी दी परन्तु साथ ही साथ राजधर्म व चारों वर्णाश्रमों के धर्मों की तथा योग की शिक्षा भी दी। जब तक अलर्क जवान हुआ तब तक नित्य प्रति वह उसे शिक्षा उपदेश दिया करती थी और विपत्ति काल में जब महाराज अलर्क का राजपाट सब नष्ट हो गया, सैन्य बल नष्ट हो गया, काशीनरेश ने उनके सम्पूर्ण राज्य को अपने अधीन कर लिया तो उनके लिये माँ द्वारा दिया हुआ ज्ञान ही काम आया और वे विरक्त हो गये। यदि वे युवावस्था तक उस ज्ञान ही का अनुशीलन न करते व माँ द्वारा दिये गये ज्ञान को हृदय में स्थान न देते तो क्या उस विपत्तिकाल में उन्हें तीव्र वैराग्य हो सकता था। अतः विपत्ति या अन्य आकस्मिक घटनायें भी उन्हीं के लिये सार्थक हो पाती हैं, जिन्हें पहले से ही ज्ञान हो या कोई पूर्व संस्कार उदय हो गया हो।

(क्रमशः)

***

'वंदे धेनुमातरम्

राजेश कुमार सिंह बलिया

'सृष्टि का समस्त प्राणी पर्यावरण–चक्र का अंश है, जो सृष्टि को संतुलित रखने में अपना योगदान देते हैं, लेकिन ये सभी प्राणी प्रकृति का दोहन–पोषण से अधिक करते हैं। किन्तु गाय एक ऐसा प्राणी है जो प्रकृति से जितना लेती है उसका सौ गुणा करके उसे लौटाती है। गाय के रोम–रोम से आक्सीजन का निर्माण होता है जो वायुमण्डल की कार्बनडाई आक्साइड को शुद्ध करती है। गाय के दूध से मानव को आयु, बल और बुद्धि की प्राप्ति होती है। गौ मूत्र से सैकड़ों असाध्य रोगों का उपचार तथा असंख्य विषाक्त कीटाणुओं का नाश होता है और गाय के गोबर से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

गौ माता के दूध में यह विशेषता है कि उसके पीने से शरीर में समस्त धातुएँ रस, रक्त, मांस, अस्थि मज्जा, वीर्य आवश्यकतानुसार बनती है। शुद्ध देशी गाय के पचास किलोग्राम शुद्ध दूध में एक ग्राम स्वर्ण मात्रा होती है जो कि वर्तमान कीमत में दस रुपया प्रति किलोग्राम पड़ता है क्योंकि दस रुपये का तो सोना ही है। रोग जब असाध्य व जीर्ण हो जाता है तो वैधराज स्वर्ण भस्म प्रयोग करते हैं। प्राचीन काल में स्त्री व पुरुष सौन्दर्य प्रसाधन के लिए दूध–दही, मलाई का प्रयोग करते थे तथा अपर्व सौन्दर्य होता था। वर्तमान में कई नामी कम्पनियां अपनी क्रीम बेचने के लिए स्वण योग का सहारा ले रही है। गौ दुग्ध पदार्थों में स्वर्ण योग प्राकृतिक रूप से पाया जाता है।

मां के दूध के बाद गाय का दुग्ध ही सर्वश्रेष्ठ आहार ! : .ज्ञानिक परीक्षणों से यह सिद्ध हो चुका है कि गाय के दूध–दही में शरीर के लिए लाभकारी सौ से अधिक तत्वों के अलावा पर्यावरण शुद्धि की अचूक क्षमता भी निहित है। गौ दूध की महिमा निराली है; यह मन, बुद्धि आत्मा को पुष्ट करता है। गाय के दूध से बहुत से महत्वपूर्ण पदार्थ प्राप्त होते हैं। दही, घी, मट्ठा आदि मानव शरीर में औषधि का कार्य करती हैं। गाय का दूध दस्त को बांधने वाला, चिकना, भारी औषध गुण सम्पन्न, रक्तपित का शमन करने वाला, शीतल स्वादु और परिणाम में मधुर जीवन बढ़ाने वाला और वात पित्त को नष्ट करने वाला कहा गया है। शरीर के पन्चानवे प्रतिशत रोग आमाशय के विकार, गन्दगी रोग कीटाणु, विषैली वायु आदि से उत्पन्न होते हैं। गाय के दूध दही में उत्तम और शक्तिशाली मित्र अणुओं की सृष्टि होती है। पैंतीस बूँद एक क्युबिक सेन्टीमीटर दूध में पांच से दस लाख व मट्ठा में सौ गुणे पांच से दस करोड़ ऐसे अणु रहते हैं जिनका काम रोगाणुओं को मार भगाना है। जीवाणुओं को खा जाने वाले जीव भी दूध दही में बहुत होते हैं। रूसी वैज्ञानिक शिरोविच के अनुसार एक

तोला घी जलने से एक टन आक्सीजन गैस बनती है तथा वायुमण्डल के आणविक विकिरणों का प्रभाव क्षीण होता है। गोघृत को चावल के साथ मिला यज्ञ में आहुति देने से एथलीन आक्साइड, प्रोपीलीन आक्साइड और फारमैल्डीहाईड उत्तम जीवाणु रोधक है जिसका ऑपरेशन थियेटर को जीवाणु रहित करने में उपयोग होता है । प्रोपीलीन ऑक्साईड के छिड़काव से वातावरण शुद्धि एवं जल वर्षा होती है कोई भी गर्भवती माता यदि गर्भावस्था में ढाई सौ ग्राम गो दुग्ध या दही चांदी के बर्तन में जमाकर नित्य सेवन करे तो संतान ओजस्वी, तेजस्वी व बिना किसी ऑप्रेशन सहज पैदा हो जाता है। इसलिए विश्व में गो दूध, घी, मट्ठा की मनुष्य जीवन में उपयोगिता सुपरिभाषित है।

गौ मूत्र में चौबीस खनिज तत्व हैं। प्रत्येक गोवंश वर्ष में १.५ टन मूत्र देता है जिसमें २८ किलो नाइट्रोजन २० किलो फास्फोरस और २७.३० किलो पोटाश के अतिरिक्त गंधक, अमोनिया, मैग्नीज, यूरिया साल्ट, कॉपर एवं अन्य क्षार भी गोमूत्र में पाये जाते हैं। यदि इन सभी तत्वों को सही उपयोग किया जाए तो देश के सम्पूर्ण गोवंश से प्राप्त मूत्र का मूल्य एक खरब अर्थात् सौ अरब रुपये होता है। यह गोमूत्र एक निरापद कीटनाशक है जो हानिकारक कीड़ों का नाश तो करता ही है साथ ही भूमि के उर्वरा शक्ति को भी बढ़ाता है। वातावरण शुद्धि के लिए भी गोमूत्र का छिड़काव किया जाता है। आयुर्वेद एवं नव चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से गोमूत्र एक परमोपयोगी रसायन एवं पूर्ण औषधि है। यह असाध्य व लाचार लाईलाज रोगियों के लिए संजीवनी, रामबाण महौषधि है। ताजा गोमूत्र सात बार कपड़े में छानकरके सुबह खाली पेट और शाम को पांच–छः बजे सेवन करने से रोगियों को निश्चित लाभ होता है। कोढ़, बावासीर, मधुमेह, नपुंसकता, गंजापन, चर्मरोग, पुराना कब्ज, रक्तचाप, नेत्र विकार, सफेद दाग इत्यादि अनेक रोगों की अचूक दवा के साथ ही गो मूत्र मस्तिष्क के लिये शक्ति वर्द्धक जीवनी शक्ति है। आयुर्वेद के विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थों जैसे चरक संहिता, अमृतसागर, वृद्ध बाग भट्ट, राजनिघन्टु आदि में अनेक असाध्य रोगों की गोमूत्र चिकित्सा का वर्णन किया गया है।

भारत की शास्त्रीय मान्यता है कि गाय के गोबर में महालक्ष्मी का वास होता है इसलिए लोग दीपावली के त्योहार के दिन गाय की और दूसरे दिन गोवर्धन की पूजा करते हैं। गोमय गोबर चर्म रोगों के लिए अति उत्तम महौषधि है, इसमें वनस्पति क्षार सार रूप में विद्यमान हैं। विदेशों में हुए वैज्ञानिक प्रयोगों से ये सिद्ध भी हो चुका है कि जिन घरों की लिपाई गोबर से की जाती है उनमें परमाणु विकिरण या रेडियो धर्मिता का दुष्प्रभाव नहीं होता। इसके गैस से ऊर्जा, खाद एवं जलाने से वातावरण शुद्धि होती है। शेष बची राख भी एक अच्छी उर्वरक व कीटनाशक है तथा बर्तन सफाई का निरापद पावडर है।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी सम्पूर्ण हिसाब लगाकर सिद्ध किये थे कि–"एक गाय और

उसके वंश से उत्पादित दूध और अन्न से चार लाख, दस हजार, चार सौ चालिस मनुष्यों को एक बार का भोजन मिल सकता है; जबकि उसके मांस से केवल अस्सी आदमियों को सिर्फ एक बार तृप्ति होगी।"

"हे मां धेनु ! आपको कोटि–कोटि प्रणाम, आपकी सेवा से स्वर्ग और गौलोक पृथ्वी पर दिखलाई पड़ जाता है और जहां आपका वास होता है वह जगह बृजभूमि अर्थात् श्री कृष्ण मय हो जाता है।

***

गुरु दोहावली

दिनेश शर्मा जरेरा (दिल्ली)

जीवन व्यर्थ रहा मेरा, नहीं पाया कुछ ज्ञान।
नहीं दर्शन खुद के किये, नहीं गाया गुरु गान।।
गिनी हुई ये सांस हैं, बिरथा मती गवांय।
गुरु नाम का जापकर नहीं तो फिर पछिताय।।
योग–योग ही योग है, योग सकल आधार।
योग जोड़ता सभी को, क्या गुरु हरि पितु मात।।
नहीं जाना मैं योग को, नहीं जाना मैं ध्यान।
नहीं सत्त संगति कर सका, कैसे हो कल्यान।।
पाप आगि एसी लगी, सब को रही जलाय।
जो आवे सद्गुरु शरन, दें शीतल लेप चढ़ाय।।
जीवन सत्य करे कोई, है गुरु का वरदान।
रोग न व्यापे देह को, सत्य बात लेऊ मान।।
है दर्शन दुरलभ बड़ा, बड़े भाग्य लेउ मान।
जो मिले सच्चा गुरु, पूर्ण सत्य लेउ जान।।
मधुवन अंदर बीस रहो, देखो ध्यान लगाय।
योग राह पर चलि पड़ो, पहुँचो मधुवन जाय।।
हार हाथ मैं है मेरे, मन मैं चाहूँ जीत।
गुरुवर गला बढ़ाई देऊ, जीवन जाऊँ जीत।।

मेरे सद्गुरुदेव

विजय सिंह

निजता, ममत्व एक देशीय होने पर अहंकार संकीर्णता का बोध कराता है। परन्तु अनन्त, अखण्ड सत्ता जब व्यक्ति विशेष से जुटता है तो वह निजता निष्ठा, वह ममत्व श्रद्धा का रूप ले लेता है। इसी माध्यम से अहंकार का परिष्करण प्राणिधान द्वारा सम्पादित होने लगता है। "श्री भगवद्गीता" में भगवान का कथन है–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।

श्रद्धा रहित दान, तप–जप जो भी हम करते हैं वह "असत" है व्यर्थ है। वह न इस लोक में लाभ देने को है, न मृत्यु के बाद ही।

ऐसा स्वयं का अनुभव है कि सद्गुरु भगवान इस कलिकाल के संसय सर्प द्वारा ग्रसित जीवों को स्वयं आकर्षित करते थे, उन्हें अपनी कृपा–शक्ति से अन्तरजगत् में प्रवेश कराकर दिव्यानुभूतियों से विभूषित करते। तप–साधना, श्रेय पथ के सद्गुणों का विकास साधक में कराते। आरम्भ में ऐसे साधक अति विनम्र, सेवक आज्ञाकारी रहकर प्रगति-करते परन्तु कालक्रम में पात्रता का ठीक–ठीक विकास न करने के कारण अहंकारी, दुर्मद, अवज्ञाकारी, मनोमुखी बनते हुए देखा गया। बाह्य रूप से इस अवस्था में श्रद्धा ह्रास होने के कारण उनके अन्तर में आनन्द का अभाव ज्योति–नाद की विकृति रूप में प्रकट मिथ्या भास के रूप में पतन हो जाते देखा गया।

आध्यात्मिक अनुभवों से सराबोर बढ़ी उच्च स्थितियों से पतन का कारण भगवान जगदगुरु श्री कृष्ण ने किसको बताया है–

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धेयनमिह वैरिणम।।

रजो गुण से उत्पन्न काम और क्रोध अध्यात्मिक बोध को निगल जाते हैं। ये अत्यन्त पाप पूर्ण हैं। संसार में साधक के लिये इनसे बढ़कर और कोई शत्रु नहीं है।

साधन नाना दिव्यानुभूतियों में मस्त रहता हुआ यदि अपने में कर्तापन के भाव का तिरोधान सद्गुरु चरणों में समर्पण के द्वारा करता जाय तो साधना अन्तराय रहित बढ़ता जाता है। शुद्धातिशुद्ध आत्मप्रभा का बोध होता है। कदाचित किसी प्रकार की अहंकृति, काम, क्रोध, लोभ द्वारा परलक्षित हो तो सदगुरु शरणापन्न हो अपनी कमजोरी दूर करने हेतु प्रार्थना करना चाहिए। अन्यथा महा अनर्थ साधक के साथ घटित होना अनिवार्य सा है।

पिछले लेख में भाई श्री महेन्द्र नारायण जी के निजानुभूतियाँ, सदगुरु कृपा से कैसे विकसित हुआ का विवरण दिया गया। अब हम देखेंगे कि उनकी श्रद्धा का विकास

ज्यों–ज्यों बढ़ता गया उनके आध्यात्मिक अनुभव ध्यान से बढ़कर लयता रूपी समाधि की ओर अग्रसर हुआ।

मैं सन १६८५ ई. में उनके सम्पर्क में आया। उस समय सदगुरु प्रेम में वे डूबे एक विशेष सरूर में रहा करते थे। वे कहते थे अजपा गायत्री मंत्र उन्हें सदैव सुनाई पड़ता रहता है। यह उनका मानसिक जप की अवस्था थी। वे बताते थे देखो थोड़ा अन्तर वृत्ति की ओर जब मैं ध्यान धरता हूँ तो अनन्त जलराशि के ऊपर चार दलों वाला पीत कमल दीखने लगता है। उसके ऊपर लालवर्ण लम्बा उदर, एक दन्त पीताम्बर पहले, सूँड़ एक ओर को मुड़ी हुई चतुर्भुज रूप में मुझे मेरे गुरुदेव उस कमल पर बैठा देते हैं। एक ओर ऋद्धि तथा दूसरी ओर सिद्धि एक हाथ में आरती तथा दूसरे हाथ में चंवर लिये मेरी (गणपति रूप लयता) आरती करती हैं। उस समय मेरे मुखमण्डल के चारों ओर प्रकाशावृत्त दीखता है। यह सब दृश्य आँखें बन्द हों या खुली हर अवस्था में उन्हें दृष्टिगोचर होने लगता था। मकर वाहली सुरसरि गंगा के दर्शन का विवरण हो अथवा अनवरत धवल प्रकाश दर्शन, भाई जी अत्यन्त विशद ढंग से बताया करते थे। वे हम सभी से पूछते कि क्या ऐसा तुम सबको भी होता है। एक बार वे कहने लगे कि इन दिनों जीव–जन्तु, मशीन पेड़ पौधे सबमें से धवल प्रकाश रजतवर्णी की लपट निकलकर मुझमें समाहित होती रहती है। संतोष जनक उत्तर न पाकर वे कहते इसका रहस्य तो सदगुरु ही जानते हैं।

स्मरण करते ही सदगुरु दर्शन एवं लौकिक कार्यों की सफलता असफलता का भावी बोध श्री प्रभु जी इन्हें करा देते। जो आगे चलकर बिल्कुल वैसा ही घटित होता। अनेक बार उनको सदगुरु चरणों की कृपा का अद्भुत वर्णन करते करते रोमांचित, निर्विवाक, नेत्र अश्रुपूरित तथा गद्‌गद् होते हमने देखा था। पौराणिक घटनाओं का सजीव अवलोकन उन्हें ध्यान में होता था।

सदगुरु के एक दृष्टि डालने से जीव के अन्दर सोई महाशक्ति कुण्डलनी जागकर उसे शिवत्व प्रदान करती है। सदगुरु परम करुणार्णव सदाशिव ही हैं। नरतन में वासकर अपने संस्कारियों के दुःसंस्कारों को काटते रहते हैं। आदि सदाशिव ही करुणापूरित हो नर देह में आकर जीव कल्याण समय–समय पर किया करते हैं। गुरुतत्व का मूल भगवान सदाशिव हैं–

जगद्‌गुरु नमस्तुभ्यां शिवाय शिवदाय च।
योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरुणां गुरुवे नमः।।

देवता, ऋषि–मुनियों ने जगद्‌गुरु, योगियों के योगिराज, गुरुओं के गुरु कहकर भगवान सदाशिव की अभ्यर्थना करते हैं। सदगुरु से महत कुछ भी नहीं है। नास्ति तत्वं गुरुः परम्।

उपरोक्त मन्तव्यों को प्रकट करने वाला बोध भाई जी के एक दिन कृपा कर सदगुरु भगवान ने कराया। उन्हीं के शब्दों में–

उन दिनों गुरु कृपा से ध्यान में बैठते ही मैं अपरमित अलौकिक प्रकाश युक्त शिवरूप में

अपने को देखता था। ऊपर आकाश में अखंड ज्योतिर्मय सदगुरु भगवान विराजमान हो मुझ पर प्रकाश छोड़ते हुये दर्शन देते थे। सहसा देखा कि कीट, कुण्डली मोरमुकुट युक्त अपूर्व शोभा निधि भगवान कृष्ण जी मुरली बजाते चिराकाश में प्रकट हुये। वे नख–शिख प्रकाश से युक्त थे। उनकी बाँसुरी की ध्वनि स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी। अल्पकालावधि बीतते–बीतते शुभ्र ज्योत्सनामय नख शिख श्रृंगार युक्त अति कमनीय राधा जी प्रकट हुई तथा बहुत देर तक राधा–कृष्ण की युगल जोड़ी सदगुरु समक्ष अद्भुत नृत्य–वादन करती रही।

सदगुरु चरणों से तीव्र प्रकाश बार–बार निकल कर उन महाविभूतियों पर पड़ती तथा उन्हें अवर्णनीय तेजपुंज से प्रकाशित करती। घण्टों रास करने के बाद युगलमूर्ति पर ध्यान से विरहित होने पर भी मन उन्हीं अपूर्व दृश्य चिन्तन में लीन था।

महात्मा विदुर जी धर्म के आठ अंग बताते हैं देखें–

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्वयेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः।।

अर्थात् यज्ञ, स्वाध्याय, तपस्या, दान, सत्य, क्षमा, दया और संतोष धर्म के आठ पहलू हैं। पहले चार यज्ञ, स्वाध्याय, तपस्या, दान के बारे में भगवान श्री कृष्ण ने गीता में इनके विविध भेद बताये। तात्पर्य यह की तामसिक, राजसिक, सात्विक भावों से इनके भेद प्रभेद बनते हैं और उन्हीं प्रकार से फल भी देते हैं। परन्तु सात्विक ही अध्यात्म अन्वेषण में सहायक है। राजसिक तामसिक यज्ञ दान तप स्वाध्याय लोक एवं स्वर्गादिक ऐश्वर्यों के प्रदाता तो हो सकते हैं परन्तु आत्म ज्ञान में इनका कोई कण भर भी योगदान नहीं होता। भगवान पातंजलि जी ने क्रियायोग की परिभाषा में "तपः स्वाध्याय ईश्वर प्राणिधानि क्रियायोगः" ईश्वर प्राणिधानता से युक्त तपः स्वाध्याय को ही समाधि जनक कहा है।

दूसरे चार धर्म के लक्षण सत्य, क्षमा, दया, संतोष से ही आत्मप्रकाश प्रकट होकर संरक्षित भी होता है। अष्टांग योग के यम–नियम से रहित साधक की साधना विफल हो जाती है। अभ्यास, वैराग्य से ही विवेकज ज्ञान (प्रज्ञा) का उदय होता है। जब तक साधक सृष्टि नानत्व के मूल के कारण को जान नहीं लेता, माया अत्यन्त सूक्ष्म रूप में भी कार्य करती रहती है और किसी समय पुनः बुद्धि के ऊपर आवरण डाल सकती है जिससे संशय सर्प अध्यात्म जीवन को डस कर "पुनः मुषको भव" की कथा चरितार्थ कर डालती है।

अतः जिस समय सदगुरु की कृपा शक्ति साधक में तीव्रता से कार्य कर रही हो उसे चाहिये कि सब कुछ सदगुरु पर छोड़ दे। अनुभूतियों को अपनी विशेषता न समझे नहीं तो सद–पात्रता का ही अहंकार पतन का कारण बन जाता है। शक्ति का स्वभाव है स्वातंत्र, तीव्र प्रसार। इस विश्व की सृष्टि, स्थिति और विलय का कारण स्वतः सदगुरु प्रिया कुण्डलिनी है। उसके जागरण से ही जीव को शिवतत्व का बोध होता है। बड़ी से बड़ी अनुभूतियों का भी कारण यही शक्ति रहस्य है।

***

महात्मा अमीरानन्द

लेखक–राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

भाई अमीराचन्द योगी, माच्छर हेड़ी जि० हरिद्वार पूज्य गुरुदेव जी के निष्ठावान अनन्य भक्तों में से रहे हैं। उनके अनुभवों से सम्बन्धित उन्हीं के द्वारा भेजा गया एक पत्र वर्ष १९९५–९६ में डाक द्वारा सम्पादक, सिद्धयोग कार्यालय के नाम से प्राप्त हुआ था। किन्हीं अपरिहार्य कारणों से महात्मा अमीरानन्द जी के अनुभवों का प्रकाशन यथासमय सम्भव नहीं हो सका। सम्पादक महोदय की अनुमति पाकर मैं उनके अनुभवों को आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'अनुभव' अर्थात् यथार्थ ज्ञान, यह चाहे किसी योगी के ध्यान का हो अथवा किसी महापुरुष के संघर्षपूर्ण जीवन दर्शन का, समान विषय क्षेत्र से सम्बद्ध नये पथिकों के लिए जीवन की संकीर्ण अजान राहों में यह एक सच्चे पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करता है व उनकी अनेक अड़चनों–उलझनों को बड़ी सरलता से दूर कर उन्हें अपने उद्देश्यपूर्ण जीवन पथ पर आगे बढ़ने के लिए अद्भुत उत्साह उमंग से भर देता है।

सहारनपुर के निवासी हमारे वरिष्ठ गुरुभाई श्री जुगन्दर दास शर्मा (मंत्री जी) महात्माजी के घनिष्ठतम् मित्रों में एक रहे हैं। अपने जीवन के अन्तिम समय से एक सप्ताह पूर्व यह सपरिवार श्री सिद्ध गुफा दर्शनार्थ आए थे। तभी मेरा उनसे श्री प्रभु जी कृपा से सम्पर्क हुआ। सरल हृदय उदार व्यक्तित्व वाले भाई मंत्री जी ने मुझे महात्मा अमीरानन्द जी के आध्यात्मिक व लौकिक जीवन से सम्बद्ध अनेक घटनाओं का ज्ञान उपलब्ध कराया। उनके अनुसार, महात्मा जी की योग में गहरी रुचि, योगाभ्यास में तत्परता, उनके विलक्षण ध्यान अनुभवों व उनकी दृढ़ गुरुनिष्ठा ने अनेक लोगों को आकृष्ट कर लिया था।

एक बार भाई मंत्री जी ने पूज्य गुरुदेव भगवान से, लोगों में उनकी लोकप्रियता को देखकर पूछा– 'प्रभुजी ! भाई अमीरानन्द जी की ध्यान स्थिति किस स्तर की है ?' प्रत्युत्तर में श्री गुरुदेव जी ने कहा–'लल्ला ! वह सम्प्रज्ञात समाधि के अन्तर्गत हैं अभी उनका असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश नहीं है। पहले विवेक ख्याति की प्राप्ति आवश्यक है। समाधि की पराकाष्ठा विवेक ख्याति को प्राप्त कर लेने के बाद योगी साधक असम्प्रज्ञात समाधि में स्वयं ही प्रवेश पा जाता है। मेरा गुरु निष्ठ बच्चा है, गुरुदेव रक्षक तो हैं ही हैं किन्तु फिर भी उन्हें अब चित्त की सूक्ष्म वृत्तियों पर संयम करना बहुत आवश्यक है। यही समय है जब साधना में विशेष संयम की आवश्यकता होती है। क्रोध उनके चित्त का एक ऐसा स्वाभाविक दोष बन कर रह गया है जो विवेक ख्याति तक पहुँचने में एक बड़ी बाधा बन रहा है।

अमीरानन्द यदि संसारी लोगों से अपना सम्पर्क कम कर दें और साधना में रत रहे तो सम्भव है कि उनको मंजिल मिल जाये। पूज्य गुरुदेव भगवान थोड़ी देर शान्त रह कर बोले– लल्ला ! साधक जीवन बहुत सावधानी से भरा होता है। अमीरानन्द मेरे बच्चे ने बड़ी तीव्रतम् लगन के साथ योगाभ्यास करके अन्तर्मुख वृत्ति प्राप्त की है। अन्तर्मुखता प्राप्त कर लेने पर साधक को संसारी लोगों से अपना सम्पर्क–व्यवहार बहुत कम कर देना चाहिए। योग में चढ़ता हुआ साधक यदि संसारी लोगों में रुचि लेगा तो वह राग–द्वेष के झमेले में अवश्य ही पड़ जायेगा। कठिन साधना से कमाई शक्ति इन्हीं झमेलों में व्यय होती रहती है और साधक खाली रह जाता है। हमने कई बार उनको संकेत किया–लल्ला ! पहले अपनी फिकर करो तुम्हें दूसरों का भला करने की ऐसी क्या जरुरत आ पड़ी है ? क्या मैंने अपने बच्चों की जिम्मेदारी छोड़ दी है। अपने बच्चों का ध्यान रखना मेरा काम है तुम्हारा या और किसी का नहीं है। मैंने उन्हें उनकी नैया पार लगाने का वचन दिया है। इसलिए यह जिम्मेदारी तो मेरी है। मेरे बच्चे मुझे छोड़ दें किन्तु मैं उनको जन्मों–जन्मों तक नहीं छोडूँगा। मेरे बच्चे भले ही मुझे भूल कर कहीं दूसरों के चक्कर में पड़ जाएँ किन्तु मैं उन्हें नहीं भूलता।

एक बार भाई ब्र० दासलाल जी अपने साधक जीवनकाल के दौर में आँवले के वृक्ष के नीचे प्रभु चरणों में बैठ कर पत्रों के उत्तर लिख रहे थे। तभी एक ब्रह्मचारी पर उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने पूज्य श्री गुरुदेव जी से शिकायत की, महाराज जी ! फलां ब्रह्मचारी आपसे छिपकर बीड़ी पी रहा है। गुरुदेव भगवान ने दासलाल जी को ही डाँट दिया। कहने लगे–लला! तुम मेरे बच्चे के गुरु नहीं हो, वह मेरा बच्चा है और मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि उसकी प्रकृति उसके संस्कार क्या हैं उसके सुधार के लिए मुझे क्या करना है यह भी मैं जानता हूँ तुम सिर्फ मेरी आज्ञा मानो और अपने कार्य में ध्यान दो।

मंत्रीजी से गुरुदेव जी ने आगे कहा–देखो लला ! योगी गुरु कभी नहीं मरता है। जितनी सावधानी पूर्वक वह अपने बच्चों की देखभाल अपने जीवनकाल में करता है देहपात के बाद भी अप्रत्यक्ष रुप से बिल्कुल वैसे ही अपने बच्चों की संभाल करता रहता है। बात अनन्य निष्ठा और समर्पण की होती है। वृन्दावन में जाकर देखो श्रीकृष्ण के अनन्य भक्तों के लिए योगेश्वर श्रीकृष्ण चन्द्र आज भी जीवित है। भक्तों को दर्शन देते हैं उनसे बातें करते हैं आशीर्वाद वरदान देते हैं ऐसे अनेक उनके भक्त तुम्हें वृन्दावन में आज भी मिल जायेंगे।

दृढ़ श्रद्धा, दृढ़ गुरु निष्ठा से युक्त ध्यान परायण अमीरानन्द जी सतत् चेष्टा वाले योगाभ्यासी साधक थे। सम्भवतः वे विचारानुगत समाधि में प्रवेश पा चुके थे क्योंकि विचारानुगत समाधि के अन्तर्गत लोक लोकान्तरों के, देवलोक के दृश्य ध्यान में आया करते

है। इस प्रकार के अनेक अनुभव अमीरानन्दजी को हुआ करते थे। ये सूक्ष्म विषय वाली समाधि है इसमें योगाभ्यासी साधक पृथ्वी आदि महाभूतों को न देखकर उनके सूक्ष्म तन्मात्र शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि तत्वों का साक्षात्कार करता है। महात्माजी ध्यान में अनेकानेक दिव्य दृश्यों का साक्षात्कार किया करते थे। इस समाधि के आत्मोत्थान को देखकर स्थानाभिमानी देवता अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाना शुरू कर देते हैं। दैविक प्रलोभनों में अधिकांश योग साधक अनिष्ट (पतन) को ही प्राप्त होते है।

पूज्य गुरुदेव जी के इस विषय में वचन हैं–

''यह स्थिति इस प्रकार की है जिसमें भाग्यवान गुरुदेव का लाड़ला वीर, धीर, संयमी पुरुष ही आगे निकल पाता है।''

योग साधक यदि प्रलोभन में फँसता है अनिष्ट का कष्ट तो भोगता ही है यदि वह मन पर नियन्त्रण कर ले और प्रलोभन में न फँसे तो साधक को इसी बात का अभिमान हो जाता है कि उसने देवताओं को जीत लिया। 'आगे कूँआ पीछे खाई' जैसी स्थिति पैदा हो जाती है। बार–बार साधक यह अभिमान ग्रसने लगता है कि वह देवताओं का पूज्य हो गया है। अतः स्पष्ट है कि दोनों ही स्थितियों में भयंकर पतन का भय बना रहता है।

निरक्षरता–निर्धनता से पीड़ित अति सामान्य स्तर के लोग प्रतिष्ठित समाज–परिवार में उपेक्षा का शिकार होते रहते हैं। 'उपेक्षा' का कष्ट बच्चों के लिए असहनीय होता है। छोटे बच्चे प्रेम से भरे होते हैं बदले में प्रेम ही चाहते है। प्रेम जगत में 'उपेक्षा' अर्थात् घृणा, द्वेष, क्रोध ही उपेक्षा के अन्तर्गत प्राप्त होता है। जबकि इसके विपरीत बच्चे प्रेम की प्रबल इच्छा करते हैं। धीरे–धीरे प्रेम का यही अभाव आत्मिक सम्मान के अभाव में रूपान्तरित होकर चित्त में रजोगुण के सूक्ष्म संस्कार बन कर चिपक जाता है। आगे चल कर जब उपेक्षित व्यक्तित्व जीवन के किसी विशिष्ट क्षेत्र में प्रतिष्ठिता प्राप्त कर लेता है तो लोगों से मिलने वाला बाह्य स्थूल सम्मान ही चित्त के सूक्ष्म रजोगुण को जगा देता है फलस्वरूप लोगों से सम्मान–आदर मिलने पर उसे बहुत सुख महसूस होता है क्योंकि बचपन में पैदा हुई प्रेमासक्ति के अभाव की पूर्ति अब होने से उसके चित्त से चिपके सूक्ष्म रजोगुण के संस्कार प्रेम का भोग सुख उठाने के लिए क्रियाशील हो जाते हैं। किन्तु भोग से रजोगुण शान्त नहीं होता बल्कि और ज्यादा भड़कता है। यही कारण है कि इस स्थिति को कोई योगाभ्यासी साधक जब मान–सम्मान आदि रजोगुण सम्बन्धी अनेक विषयों में से किसी में आनन्द लेने लगता है तो मन पर बहुत नियन्त्रण करने पर लौकिक सुख प्राप्त करने की इच्छा बार–बार बड़ी प्रबलता से पैदा होती है। कोई आवश्यक नहीं है कि हमेशा उपेक्षा ही रजोगुण संस्कारों की जनक होती है। रजोगुण सम्बद्ध लौकिक सुखानुभूति के अनेक विषय होते हैं उन विषयों के भोग की प्रबल इच्छा ही राजसी सूक्ष्म संस्कारों का निर्माण चित्त पर करते हैं किन्तु

इनकी अपेक्षा प्रारब्ध से प्राप्त हुये चित्त के रजोगुणी संस्कार प्रबलतर होते हैं।

योग साधकों के जीवन में बचपन में किसी–किसी के कभी–कभी ऐसे संस्कार बन जाया करते हैं। प्रारब्ध द्वारा तो न्यूनाधिक सभी को राजसी कष्ट भोगना ही पड़ता है। आत्मोत्थान में प्रगति देखकर संसारी लोग साधक को कुछ विशिष्टि प्रकार का आदर–सम्मान देने लग जाते हैं। आत्मोपलब्धि की ओर तीव्र गति से बढ रहे साधक को मान–सम्मान के प्रपञ्चों में तो कभी पड़ना ही नहीं चाहिए।

भाई अमीरानन्द जी के उत्कर्ष को देखकर अनेकानेक गृहस्थी गुरुभाई बहन उन्हें बड़े आदर–सम्मान के साथ आमन्त्रित करने लगे। भाई भी यज्ञ–अनुष्ठानों के आधार पर उनके दुःख–दर्दों को दूर करने का प्रयास करने लगे थे। पूज्य गुरुदेव द्वारा सावधान किये जाने पर भी मान–सम्मान की सुखानुभूति ने उन्हें सावधान नहीं रहने दिया। जिस तीव्र गति से वह आगे बढ़ रहे थे उसमें व्यवधान पड़ ही गया।

भाई अमीरानन्द जी पूज्य गुरुदेव जी के अनन्य भक्त थे। गुरुदेव ने कृपापूर्वक उनका अनिष्ट तो नहीं होने दिया किन्तु उनके आत्मोत्थान के विकास में विलम्ब स्वाभाविक तौर पर अवश्य हुआ ही हुआ। आध्यात्मिक उत्कर्ष की कामना से प्रेरित होकर तीव्र लगन के साथ वह विचारानुगत समाधि में प्रवेश पाये किन्तु बाद में व्यवधान पड़ने के बाद उन्हें पहले जैसा आत्मिक आनन्द प्राप्त नहीं हो पा रहा था शायद यही कारण था कि उनके स्वभाव में क्रोध वृत्ति बढ गई थी। 'कामात् क्रोधो अभिजायते'–सूत्रानुसार यह सिद्धान्त की बात है कि कामना की पूर्ति के अभाव में क्रोध उत्पन्न होता है।

कलिकाल में बड़ी कठिनाइयों का सामना करने के बाद गुरुकृपा से कोई अन्तर्मुखता को प्राप्त होता है। ऐसे साधक को अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति को सुरक्षित रखने के लिए हर समय सचेत रहना चाहिए।

गुरुवाणी

देखो ! मैं अपने प्रत्येक योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान श्रीकृष्ण के इन वचनों को अवश्य ही दोहराया करता हूँ।–

विविक्त सेवी लघ्वासी यतवाक्कायमान सः
ध्यानयोग परो नित्यं वैराग्य में समुपाश्रितः
अहंकार बलं दर्प काम क्रोध परिग्रहम्
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

इसका अर्थ है–

(१) जिसका ध्यान लगता हो जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो उसे–'विविक्त सेवी'–एकान्त में रहना चाहिए। संसारी लोग विषयी होते हैं अन्तर्मुखी साधक को किसी भी

काम में संसारी लोगों के घरों में नहीं जाना चाहिए जबकि विषयी लोगों के लिए यही अच्छा है कि वे समाज में ही रहें। उनके लिए एकान्त उतना ही अनिष्टकारी है जितना कि अन्तर्मुखी साधक के लिए समाज का संग।

(२) **लघ्वासी**– हल्का आहार करना चाहिए ताकि आलस्य और निन्द्रा न सताऐ।

(३) **यतकाय**– शरीर पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

(४) **यतमानसः**– राग–द्वेष को त्याग कर क्षमाशीलता और विनम्रता को धारण करना चाहिए। नियन्त्रण हीन मन किसी का भला और किसी का बुरा करने लग जाता है।

(५) **वैराग्य समुपाश्रितः**– साधक को मन में वैराग्य धारण करना चाहिए। प्रभुजी कहते थे– जो तुम्हारा मन ले ले वही तुम्हारा वैरी है। यह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसा ही तुमको बना देगा।

(६) **अहंकार, बल, दर्प, कामं, क्रोध, परिग्रहमः**– कर्म करने का, बल का, धन का, विद्या का, किसी भी प्रकार का अहंकार साधक को नहीं करना चाहिए। अहंकार ही एक मात्र सारे अनिष्टों का कारण होता है। बल का दुरूपयोग, मिथ्याभिमान व कामनाओं का त्याग करना चाहिए। किसी पर क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध से आन्तरिक व शारीरिक शक्ति क्षीण होती है। साधक को जीवनोपयोग कम से कम वस्तुऐं ही अपने पास रखनी चाहिए।

(७) किसी वस्तु या व्यक्ति में **आसक्ति** नहीं रखनी चाहिए।

साधक यदि भगवान के उपर्युक्त आदेशों को मान कर चलता है तो वह परम शान्ति को पा जाता है ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भाई श्री अमीरानन्द जी ने अपने ग्राम माच्छर हेडी में 'श्री सिद्धयोग आश्रम' की स्थापना कराई। दो वर्ष में आश्रम बन कर तैयार हुआ। उन्होंने गुरुदेव जी के पावन चरण–कमलों में आश्रम में पधारने के लिए विनम्र प्रार्थना की। परम् पूज्य गुरुदेव भगवान अमीरानन्द जी से अत्यन्त प्रेम करते थे दीनबन्धुजी ने तुरन्त प्रार्थना स्वीकार कर ली और निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ठीक समय पर आश्रम पहुँच गये। भाई अमीरानन्द जी ने सौलह औषधियों से परम् पूज्य गुरुभगवान को स्नान कराया। भाई जी का प्रेम देखकर गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्नता से बार–बार पुलकित हो रहे थे। पूज्य श्री ने अमीरानन्द जी को अपने सीने से चिपटा लिया और उसी समय आशीर्वाद दिया "अमीरानन्द ! तुम मेरे अंग हो तुम्हारा योग सफल होगा मेरा पूर्ण आशीर्वाद है।"

(क्रमशः)

* * *

● आश्रम समाचार

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जन्म महोत्सव

विशुद्ध हृदय वाले जीवन्मुक्त असंख्य परमहंसों को भी अपना योगमय आध्यात्मिक संरक्षण प्रदान करने वाले, रामकृष्ण से महापुरुषों का संकल्प मात्र से निर्माण करने वाले, प्रकृति से परे आदि पुरुष, योगयोगेश्वर भक्तवाञ्छा कल्पतरू दादागुरुदेव सदाशिव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज का जन्मोत्सव योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा संवाई ऐत्मादपुर (आगरा) के विशाल प्रांगण में हर वर्ष की भांति हजारों गुरु भाई बहनों द्वारा अपूर्व श्रद्धा–भक्ति के साथ दिनांक १६,१७ व १८ अप्रैल को बड़ी धूमधाम से मनाया गया। समग्र भारत के कोने–कोने से पधारे विशाल भक्त समुदाय ने पूर्ण मनोयोग व हर्षोल्लास के साथ आनन्दकन्द श्री महाप्रभु जी के वार्षिक जन्मोत्सव में उपस्थित रहकर विविध सेवाओं में अपना मूल्यवान सहयोग देकर अपने जीवन को धन्य किया।

महाप्रभुजी का योग सम्बन्धी संक्षिप्त परिचय

महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का पवित्र अवतरण चैत्र की नवमी को अमृतसर में सुविख्यात, ज्योतिषी महामान्य प० गण्डाराम जी के घर में हुआ था। जगज्जननी माता, भागवन्ती को सर्वशक्तिमान प्रभु की माँ कहलाने का अति दुर्लभ अवसर प्रभु की ही महान कृपा के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। संसार के साथ अपने माता–पिता का भी उद्धार करने वाले महाप्रभुजी अल्पायु में ही तीव्रतम वैराग्य के वशीभूत होकर सर्वसमर्थ परिपूर्ण गुरु की खोज में चुपचाप निकल पड़े। कई प्रान्तों के मध्य से गुजरते हुऐ अनेक नगरों व भयंकर जंगलों में भटकते हुये किसी प्रकार अन्ततः नेपाल पहुँचे। सच्चे पूर्ण सदगुरु की तलाश में माता–पिता का परित्याग, लौकिक सुख भोग का त्याग कर, जंगलों में सिंह, हाथी, रीछ आदि जीवों के सम्मुख अपने प्राणों की भी परवाह न करने वाले महा प्रभुजी को नेपाल में, सिद्धाश्रम को छोड़कर तत्काल अष्टांग योग के परिपूर्ण आचार्य भगवान सदाशिव स्वयं महाप्रभु को अपने सान्निध्य में रखने के लिए सिद्धाश्रम से नीचे उतर कर आऐ। और महाप्रभु श्री रामलाल जी को अपने साथ अपने स्थान पर ले आये और कुछ ही दिनों की साधना के उपरान्त महाप्रभु जी को उन्होंने अपनी ही शक्तियों से सम्पन्न कर सर्वशक्तिमान बना दिया। महाप्रभुजी का वास्तविक शरीर वहीं नेपाल हिमालय में सिद्धाश्रम में ही स्थित है। कुछ समय के पश्चात अपने गुरुदेव भगवान सदाशिव की आज्ञानुसार आनन्दकन्द महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सोलह निर्माणकाय शरीरों को धारण कर संसार में योग प्रचार हेतु भूमण्डल पर अवतरित हुऐ और अखण्ड ज्योति स्वरूप योग की ध्वजा हाथ में

लेकर भिन्न–भिन्न नाम–रूपों से योग प्रचार करने लगे ताकि योग विद्या धीरे–धीरे अपनी शाखाओं प्रशाखाओं में होकर अपने विशालतम विस्तार को सार्थक रूप में सर्व साधारण जन को उपलब्ध हो सके।

गुरुप्राप्ति हेतु 'महाप्रभुजी' को यह अत्यन्त संघर्षशील चरित्र ह्रदय को अतीव उमंग और प्रेरणा से भर देता है। 'महाप्रभु' के इस महान लीला चरित्र को पढ़कर मूढ़ावस्था के मन्दभागी जन भी जीवन में पूर्ण गुरु की आवश्यकता, महत्व व मूल्य को महसूस करने लगते हैं। आनन्दकन्द महाप्रभुजी का उद्देश्य संसार में विलुप्त हुई प्राचीन योग विद्या को पुनः उसके यथार्थ स्वरूप में जन–जन में प्रकट करना है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु वे अवनि मण्डल पर आये और तीन प्रकार के कार्यों की रूपरेखा तैयार कर योग प्रचार में जुट गये। ये तीन प्रमुख कार्य निम्न प्रकार से हैं।

(१) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति

(२) अमरतत्व साधन

(३) शक्तिपात दीक्षा

जन्मोत्सव (योग महामेला) कार्यक्रम का विवरण

योग योगेश्वर दादा गुरुदेवजी के अवतरण का उद्देश्य प्रधानतः केवल मात्र योग को पुनः संसार में प्रतिष्ठित करना ही था अतः परम् पूज्य गुरुदेव प्रभु जी चन्द्रमोहन जी महाराज ने 'महाप्रभु जी' के जयन्ती पर्व को 'योग महामेला' के नाम से विश्व में सुविख्यात किया। ताकि इस त्रिदिवसीय योग महामेले में विश्व भर के योग विद्या के महत्व से पूर्णतः अपरचित लोग भी पहुँचकर योग विद्या के स्वरूप और उसकी आवश्यकता व उद्देश्य को निःशुल्क व अत्यन्त सहज–स्वाभाविक ढंग से समझने का प्रयास कर सकें। योग से सम्बद्ध, इस महामेले में, अनेक जानकारियाँ एक बार की ही उपस्थिति में उपलब्ध हो जाती हैं।

योग महामेला के माध्यम से 'योग एक रूखी विद्या है' अथवा यह अत्यन्त कठिन विद्या है जिसे प्राप्त कर पाना असम्भव सा है' इस प्रकार की भ्रान्तियाँ सर्वसाधारण जन के मन–बुद्धि से पलायन कर सकें और उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति योग विद्या की ओर बने इन्हीं महान धारणाओं को मन में संकल्पित कर, महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की पावन जयन्ती को गुरुदेव योगिराज प्रभु जी श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने श्री सिद्धगुफा दरबार में महोत्सव के रूप में आयोजित करना शुरू किया। प्रथम जयन्ती आयोजन केवल मात्र चालीस–पचास लोगों की उपस्थिति में मनाया गया ऐसा गुरुभाई श्री सुरेश चन्द्र शर्मा (कानपुर वाले) के पूज्य पिताजी से ज्ञात हुआ उनकी उन दिनों गुरुचरणों की सेवा में विशिष्ट भूमिका थी। आज यहाँ गुरुदेव भगवान के योगपरायण जीवन भर के कठिन पुरुषार्थ के प्रताप से हजारों लोग उमड़ पड़े हैं जो उनकी परम अहैतुकी कृपा को पाकर स्वयं धन्य व गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह देखकर किस गुरु भक्त का ह्रदय महान आह्लाद के

स्पन्दनों से नही भर जाता !

जन्मोत्सव आयोजन के एक माह पूर्व से ही सभी आश्रमवासी ब्रह्मचारियों ने श्रद्धापूर्वक समस्त आश्रम की सफाई में संयुक्त रूप से सहयोग किया। महीने भर सभी कमरों की पुताई व रंगाई का कार्य चला। आश्रम के आश्रम के समस्त कच्चे मैदानों को गोबर–मिट्टी से लीपा गया। सम्पूर्ण आश्रम का पवित्र धरातल स्वर्ण सा चमकता था। पंचमी व षष्ठी को बिजली–सजावट एवं भव्य पण्डाल का निर्माण किया गया। रात्रि विश्राम हेतु, भीड़ की अधिकता को ध्यान में रखते हुये, प्रधान गेट के बायीं ओर चबूतरे पर एक अतिरिक्त पण्डाल बनाया गया जिसमें सैकड़ों लोगों ने विश्राम किया। नवरात्रों के शुभारम्भ के साथ ही श्रद्धालु भाई बहनों का आश्रम में प्रवेश शुरु हो गया। सप्तमी–अष्टमी को लोग अनवरत गति से आते रहे नवमी को भीड अपने 'चरम' पर थी।

योग समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त हमारे वरिष्ठ भाइयों में वयोवृद्ध महात्मा ज्ञानीराम जी, ब्र० पूर्ण चन्द शर्मा जी, ब्र० वेदराम जी, ब्र० श्री ओम प्रकाश पालीवाल जी, आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा, श्री आत्माप्रसाद जी, डा० विजय सिंह, श्री सोमदत्त जी, ब्र० श्री पुष्कर जी, ब्र० रवीन्द्र यादव, ब्र० शम्भूनाथ जी, ब्र० सतीश शर्मा जी, श्री भुवनेन्द्र झा जी, श्री कृष्णकान्त झा जी, श्री पूर्ण चन्द पन्त, श्री विनय मालवीय जी, श्री दूधनाथ जी, श्री दशरथ तिवारी जी, व श्री केशव देव उपाध्याय जी आदि अनेक वरिष्ठ भाई–बहन श्री महाप्रभुजी की पावन जयन्ती समारोह में सम्मिलित हुऐ। "साध्वी उमा बहन जी भी षष्ठी व सप्तमी को उपस्थित रहीं। आयोजन की समुचित व्यवस्था व विभिन्न कार्यक्रमों के उपयुक्त संचालन में सभी वरिष्ठ भाईयों का सहयोग प्रशंसनीय रहा।

सप्तमी से आयोजन शुरू हुआ। प्रातःकालीन चार बजे की आरती व गीता पाठ के बाद पण्डाल में उपस्थित अनेकों लोगों द्वारा जीवन तत्व साधन व ध्यानाभ्यास किया गया। सुबह ६ बजे महाप्रभुजी का सामूहिक आरती पूजन किया गया। तत्पश्चात मंच से आचार्य ब्र० दासलालजी, ब्र० शम्भुनाथ जी, ब्र० वेदराम जी, श्री आत्माप्रसाद जी, ब्र० श्री ओमप्रकाश पालीवाल जी, डा० विजय सिंह, श्री पूर्ण चन्द पंत व ब्र० रवीन्द्र यादव द्वारा गुरुगीता पाठ किया तथा पण्डाल में बैठे जनसमूह ने उनका सहयोग किया।

गुरुगीता पाठ के पश्चात योग व योग के सिद्धान्तों पर 'प्रवचन कार्यक्रम' हुआ। जिसमें विद्वान गुरुभाइयों ने अपनी योगपरक विद्वता का परिचय दिया।

संचालक महोदय आचार्य श्री दासलाल जी द्वारा सभी विद्वान योग वक्ताओं से 'गुरु का स्वरूप' और 'गुरु की उपयुक्त उपासना' विषय पर अपने मनतव्य अभिव्यक्त करने का अनुरोध किया। आचार्य श्री दासलाल जी के अनुसार गुरु तत्व काल की सत्ता से परे है। गुरुमूर्ति का ध्यान ही गुरुतत्व की उपयुक्त उपासना है। इस विषय को उन्होंने विस्तार के

साथ समझा कर प्रकट किया।

ब्र० ओमप्रकाश पालीवाल जी के अनुसार सद्गुरु सत्ता का सान्निध्य ही 'सत्संग' है। ऐसा सत्संग बड़े भाग्य से मनुष्य को प्राप्त होता है। ब्रह्मा विष्णु, महेश को भी गुरु ही कहा गया है किन्तु नाम–रूप भेद से गुरुतत्व इनमें गुरुतत्व अलग–अलग सा दिखलाई पड़ता है जबकि गुरुतत्व ऐसा है नहीं। वह तो एक का एक ही है। ब्रह्मा आवागमन की सृष्टि करते हैं, विष्णु जीवात्मा को पोषण प्रदान करते है शिव संहार करते हैं तीनों के अलग–अलग कार्य हैं जबकि ये तीनों ही कार्य गुरुतत्व के द्वारा अपनी शिष्य रूप सृष्टि पर एक साथ घटित होते हैं। सद्गुरु की अपनी अलग सृष्टि होती है। वे स्वयं अपने बच्चों की सृष्टि करते हैं अर्थात् जन्म देते हैं। शिष्य गुरुदेव को गुरु बनाना अपना उद्देश्य समझता है जबकि गुरु के लिए शिष्य बनाना उनका उद्देश्य नहीं है। आवागमन का भँवर तैयार करना यह ब्रह्माजी की सृष्टि है जबकि इस सृष्टि से छुटकारे के लिए ही गुरुदेव हमारी सृष्टि करते हैं। गुरुतत्व ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कार्यो को अपने शिष्य के साथ एक साथ कर देते हैं। शिष्य ही उनकी सृष्टि है। अर्थात् ब्रह्मा रूप से गुरुदेव हमें जन्माते हैं अर्थात् हमारी सृष्टि करते हैं, विष्णु जी के कार्य रूप में गुरुदेव मंत्र द्वारा हमें आत्मबोध कराकर हमें पोषण प्रदान करते हैं और फिर शिव रूप में हमारी जीवात्मा का संहार करते हैं। ऐसी सामर्थ्य को रखने वाला वह एक तत्त्व ही 'गुरुतत्व' है।

गुरु की उपासना के संदर्भ में माता पार्वती को सन्देह हुआ कि जो आत्मा, जीवात्मा को प्राप्त हो गया है वह पुनः आत्मा को कैसे उपलब्ध होगा।

उन्होंने भगवान शंकर से पूछा– "हे आदि देव! जीवन अपने आत्म स्वरूप को किस उपाय (उपासना) से प्राप्त कर सकता है। तब भगवान शंकर ने कहा हे देवी ! इसके लिए एक ही उपासना उपयुक्त है उसे (जीवात्मा को) गुरुदेव का ध्यान करना पड़ेगा। जैसे – पानी जो अतिशीत के कारण बर्फ बन जाता है वही पानी गर्मी से पिघल कर पुनः पानी हो जाता है। ठीक इसी प्रकार गुरुमूर्ति की ध्यान रूप साधना द्वारा जीवात्मा पुनः अपने ब्रह्मस्वरूप (आत्मस्वरूप) को प्राप्त हो जाती है।

श्री पूर्णचन्द पंत जी ने सिद्धयोग के द्वारा बड़ी सरलता से जीवात्मा द्वारा अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा बतलाया। उनके अनुसार सिद्धयोग का विद्यार्थी बनने के लिए साधक में आत्मसमर्पण की योग्यता का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है।

बनारस से पधारे श्री आत्मा प्रसाद जी का प्रवचन विशेष उल्लेखनीय रहा। गुरु में अनन्य निष्ठा और उनकी आज्ञापालन ये दो बातें गुरुकृपा से आत्मलाभ हेतु अत्यन्त आवश्यक है। उनके जीवन में घटित हुये अनेक अनुभवों को गुरुदेव से सम्बन्धित अत्यन्त रोचक दृष्टान्तों द्वारा प्रस्तुत कर गुरुभक्तों का हृदय रोमाञ्च से भर दिया ।

वहीं श्री विनय मालवीय जी ने कहा कि सिद्धयोग हेतु आत्म समर्पण की शर्त की पूर्ति

कर पाना आसान बात नहीं है। तुलसी सूर जैसे भक्तों को निःसन्देह आत्मसमर्पण की योग्यता के आधार पर ही सिद्धयोग प्राप्त हुआ और वे अपूर्व आध्यात्मिक उत्कर्ष को प्राप्त हुऐ किन्तु 'आत्म समर्पण' की योग्यता के विकास के लिए उन्हें पहले उपाय प्रत्यक्ष (साधन योग) का अवलम्बन लेने में तीव्र संवेग से संघर्ष करना पड़ा है।

डा० विजय सिंह जी को अपने विचार प्रकट करने का मौका नहीं मिल सका। उन्होंने भाइयों बहनों में उमंग–उत्साह को देखकर अपना समय भी वरिष्ठ भाई श्री आत्मा प्रसाद जी को समर्पित कर दिया। ताकि लोगों को अधिकाधिक गुरुभक्ति हेतु सद्प्रेरणाऐं प्राप्त हो सकें।

अष्टमी को भी सप्तमी के अनुसार ही कार्यक्रमों की रूपरेखा रही। प्रवचन के विषय भी प्रातः सांय की सभा में लगभग वही रहे। रात्रि को ६ बजे आरती पूजन के पश्चात भजन कीर्तन का आयोजन होता था। साथ ही साथ भोजन का कार्यक्रम भी चलता रहता।

अष्टमी को दोपहर बाद तीन बजे से आसनों का आयोजन हुआ। षट्कर्मों के अन्तर्गत ब्र० रघुराज ने नेति, कपाल भाँति, न्यौलि आदि क्रियायें कर के दिखलायी। ब्र० वेदराम जी ने हमेशा की तरह जीवन तत्व साधना का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया तथा जटिल आसनों की श्रृंखला के प्रदर्शन में श्री बृजभूषण तिवारी, ब्र० रघुराज तथा ब्र० रवि का परिश्रम प्रशंसा के योग्य था।

नवमी को क्षेत्रीय गुरुभक्तों की भीड़ सैकड़ों की संख्या में उपस्थित हुई । प्रातः चार बजे की आरती के बाद गीता पाठ आदि किया गया। तत्पश्चात श्री प्रभुजी का श्रृंगार किया गया। ६ बजे महाप्रभुजी व गुरुदेव का भव्य आरती पूजन किया गया। आरती के समय गुरु भक्तों का विशाल समूह देखते ही बनता था।

तत्पश्चात सर्वप्रथम आश्रम के ब्रह्मचारियों ने श्री महाप्रभु जी व श्री प्रभु जी का श्रद्धावनत पूजन किया। उनके बाद महिला तथा पुरुष दो अलग–अलग लाइनों में पंक्तिबद्ध होकर धीरे–धीरे एक–एक करके पूजन करते रहे। एक बजे महाप्रसाद भण्डारा शुरु हुआ सभी ने आनन्द–उत्साह के साथ श्री महाप्रभु जी की जयन्ती का महाप्रसाद ग्रहण किया।

अनेक लोग शाम को ही विदा हो चुके थे। शाम ७ बजे से संवाई मण्डल वालों ने लगातार तीन घण्टे अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। श्री प्रभुजी के चित्ताकर्षक भजन सुनाकर लोगों का मन मोह लिया। संवाई मण्डल से पहले पोरा मण्डल ने भजन प्रस्तुत किये।

रात्रि आरती पूजन के तथा भोजन के पश्चात रातभर अनेक मण्डलों व गुरुभाई बहनों के द्वारा भजन गाकर जागरण किया गया। पाँच बजे दशमी की सुबह आरती की गई। इस प्रकार आनन्दकन्द दादा गुरुदेव महाप्रभुश्री रामलाल जी महाराज का जयन्ती समारोह सम्पन्न हुआ।

***

नव संवत् सौगात

पं. महेश बोहरे, गुना (म.प्र.)

भूल गये सागर तुम अपनी गहराई,
तोड़ रहे हो तुम अपनी मर्यादायें,
कहर सुनामी लहरों से तुमने ढाया है।
भयाक्रांत होकर ही तुमसे,
सृष्टा की सृष्टि उद्वेलित,
जड़ चेतन सब घबराया है।

अहं ग्रसित हो गये जलधि जड़,
अपनी सीमा लांघ रहे हो,
राम नहीं तो क्या ? दुनिया में–
अभी राम का नाम शेष है।
बड़ा राम से नाम राम का–
मूल मंत्र यह भूल गये हो।
राम नाम में रामबाण से अधिक ऊर्जा
रामेश्वरम साक्षी जिसके,
सेतुबंध को भूल गये हो ?

सावधान हो जाओ उदधि, अब–
अपनी सीमायें न लांघो–
निज गहराई को पहचानो।
क्या अगस्त्य की सिंधु आचमन–
घटना तुमको याद नहीं है ?
क्या समुद्र मंथन प्रसंग भी भूल गये हो ?
क्यों अपना गांभीर्य त्यागकर,
उच्छृंखल लहरों के संग तुम,
उछल कूद में फूल रहे हो ?
लहरें तो क्षणभंगुर हैं, बनती मिटती हैं,
तुम शाश्वत अस्तित्ववान
क्यों भूल रहे हो ?

रत्नों के भण्डार उदधि तुम रत्नाकर हो,
रत्नों की सौगात संजोकर लाओ तुम,
अमृत घट से अभिसिंचित कर,
कहर सुनामी से जो ढाया–
उस पर मरहम लगाओ तुम
उजड़ी और वीरान बस्ती में, आबादी–
फिर से नई बसाओ तुम,
वीरानों में नई बहारें लाओ तुम।

आशुतोष शिव महाकाल की पदरज पाकर,
कालजयी विक्रम संचालित संवत् से जो–
अनुशासित नव–संवत् सर की पावन बेला में,
जन जन का मन प्रमुदित करने–
उर–उदधि में अमित प्यार की–
सुखद हिलोरें लाओ तुम,
याद करो सागर तुम अपनी गहराई,
जन–जीवन के व्याकुल मन में
फिर विश्वास जगाओ तुम,
जन–जन के भावी जीवन में–
सुखद समृद्धि कर हो नव संवत,
इसी भाव से–
रत्नों की सौगात संजोकर लाओ तुम...।
अमित प्यार की सुखद हिलोरें लाओ तुम।

***

SIDDHYOG Regd. No. L.Ag. 008

MAY 2005

प्रधान कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ____________

____

____

□□□□□□

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मायानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

(श्री मद् भागवत ११/२०/१७)

यह मनुष्य शरीर सारे मंगलों का मूल है, शुभ कर्म करने वाले मनुष्यों को यह सुलभता से प्राप्त होता है और अशुभ कर्म करने वालों के लिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। संसार सागर से पार जाने के लिए मनुष्य शरीर सुदृढ़ नौका है। परमार्थ तत्व के ज्ञाता गुरुदेव विश्वास होते ही इसके केवट बन जाते हैं और शरण लेते ही मैं स्वयं अनुकूल वायु बनकर इसे लक्ष्य की ओर बढ़ा ले जाता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो इस शरीर के द्वारा भव सागर से पार नहीं उतर पाता वह तो अपने हाथों अपनी हत्या करता है।

प्रकाशक एवं मुद्रक :– विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसईकलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।
सम्पादक–आचार्य ब्र.(डॉ.) दासलाल शर्मा

PRINTPOINT-0562-2262261